दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९२ | तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी | वर्ष २२ अंक नं० ५

तत्त्वनिर्णय का अवसर

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

हे जीव! यदि तुझे अपना भला करना हो तो सर्वज्ञ का और सर्वज्ञकथित तत्त्वों का निर्णय कर; क्योंकि तत्त्वनिर्णय ही सर्व सुख का मूल है। तेरी बुद्धि अन्य व्यर्थ की बातों का निर्णय करने में तो प्रवर्तती है, और आत्महित के मूलाधार श्री अरिहंतदेव तथा उनके कहे हुए तत्त्वों के निर्णय में तेरी बुद्धि नहीं प्रवर्तती!—यह महान आश्चर्य है।

आत्महित के लिये तत्त्वनिर्णय करने जितना ज्ञान तो तुझे प्राप्त हुआ है; इसलिये हे जीव! तू इस अवसर को व्यर्थ न गँवा। आलस्य, मान आदि को छोड़कर उद्यमपूर्वक अपने आत्मा को तत्त्वनिर्णय में लगा। आत्मा का स्वरूप क्या? हेय-उपादय तत्त्व कौन से? पद क्या? अपद क्या? सर्वज्ञ का स्वरूप कैसा है?—इत्यादि तत्त्वों का यथार्थ निर्णय, वह सर्व मनोरथ की सिद्धि का उपाय है; और उसका यह अवसर है। इसलिये जिसप्रकार उसकी सिद्धि हो, वह पहले कर—ऐसी श्रीगुरु की शिक्षा है। *[रत्नसंग्रह (गुजराती) से]*

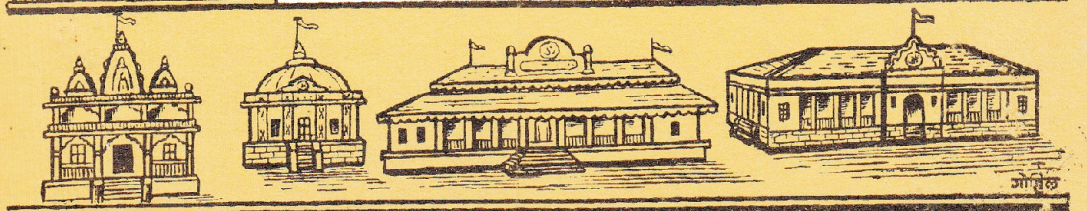

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

सितम्बर १९६६] | वार्षिक मूल्य २) | (२५७) | एक अंक २५ पैसा | [द्वि० श्रावण सं० २०२३

विषय-सूची

१. ज्ञाननेत्र खुलते ही आत्मा का दर्शन होता है
२. अचिंत्य महिमावंत आत्मशक्ति
३. आतुर शिष्य के अंतर की पुकार
४. स्वानुभूति
५. बंध और मोक्ष
६. विविध वचनामृत
७. स्वभाव के वेदन में परभाव के वेदन की अशक्यता
८. सीधा मार्ग
९. भेदज्ञान द्वारा उपशम की प्राप्ति
१०. जिसे आत्मा का महात्म्य आये वह महात्मा होता है
११. विशुद्ध ज्ञान में विकार का अकर्तृत्व
१२. जो जो देख्यो वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे
१३. परमात्म प्रकाश
१४. मोक्षमार्गप्रकाशक में नय विवरण
१५. समाचार संग्रह

श्रावक का जीवन

भगवान आदिनाथ मुनिराज चैतन्यानन्द में झूलते-झूलते हस्तिनापुर पधारे। उन्हें देखते ही श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और रोम-रोम में भक्ति उल्लसित हो उठी... अहा, मोक्ष का कल्पवृक्ष मेरे आँगन में फलित हुआ। मेरे आँगन में साक्षात् मोक्षमार्ग आया.. इस प्रकार हर्ष एवं भक्तिसहित इक्षुरस का आहारदान दिया। वर्तमान चौबीसी में मुनिराज को आहारदान का वह पहला प्रसंग था। आहार लेने और देनेवाले—दोनों चरमशरीरी थे। इसप्रकार आहारदान, जिन पूजादि का शुभभाव श्रावक की भूमिका में होता ही है। इसलिये उसे श्रावक का धर्म कहा है। इससे ऐसा नहीं समझ लेना कि वह शुभराग ही मोक्ष का कारण हो जाता है। मोक्ष का कारण तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और वही सचमुच धर्म है। गृहस्थ-श्रावक को भी उस धर्म की उपासना अंशतः होती है। मोक्षमार्ग का प्रधान अंग सम्यग्दर्शन है और उसकी आराधना गृहस्थ को हो सकती है। सम्यग्दर्शन के उपासक गृहस्थ को भी धन्य एवं कृतार्थ कहा है। ऐसे धर्मात्मा गृहस्थ का जीवन कैसा होता है? उसके शुभभाव कैसे होते हैं? उसको देव-गुरु-शास्त्र की उपासना कैसी होती है?—इसका वर्णन श्री पद्मनंदिस्वामी ने 'उपासक संस्कार' नामक अधिकार में किया है।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

सितम्बर : १९६६ ☆ वर्ष २२वाँ, द्वि. श्रावण वीर नि०सं० २४९२ ☆ अंक : ५

ज्ञाननेत्र खुलते ही आत्मा का दर्शन होता है

सहज आनंद पाइ रहो निज में लौ लाइ, दोरि दोरि ज्ञेय में धुकाइ क्यों परतु है।
उपयोग चंचल के कीये ही अशुद्धता है, चंचलता मेटें चिदानंद उघरते है।
अचल अखंड ज्योति भगवान दीसतु है, नैयकतें देखी ज्ञाननैन उघरते है।
सिद्ध परमात्मा सों निजरूप आतमा, आप अवलोकि 'दीप' शुद्धता करतु है।

भावार्थ—अरे जीवों! सहज आनंद प्राप्त करके निजस्वरूप में ही लौ लगाकर रहो; दौड़-दौड़ कर परज्ञेयों में क्यों झुक पड़ते हो? उपयोग को चंचल करने से अशुद्धता होती है और वह चंचलता मिटाकर निजस्वरूप में उपयोग स्थिर करने से चिदानंद प्रगट होात है। उस अंतर उपयोग द्वारा अचल-अखंड ज्योतिस्वरूप भगवान आत्मा दृष्टिगोचर होता है; उसे देखते ही ज्ञाननेत्र खुल जाते हैं और उन ज्ञाननेत्रों द्वारा सिद्ध परमात्मा समान अपने आत्मा के निजस्वरूप का अवलोकन करके जीव अपनी शुद्धता को प्राप्त करता है।

[—कवि श्री दीपचंदजी रचित 'ज्ञानदर्पण' से]

अचिंत्य महिमावंत

आत्म-शक्ति

अनंत शक्ति से भरपूर आत्मद्रव्य की कोई अचिंत्य महिमा है; उसकी एक-एक शक्ति की भी अपार महिमा है। समयसार के परिशिष्ट में अमृतचंद्र स्वामी ने जिन ४७ शक्तियों का अद्‌भुत वर्णन किया है, उन पर पिछले वर्ष सोनगढ़ में १४वीं बार प्रवचन हुए। जब-जब इन शक्तियों का प्रवचन करते हैं, तब-तब गुरुदेव को मानों नवीन उल्लास आता है और श्रोताजन भी उनका श्रवण करके उल्लसित होते हैं। इस बार के प्रवचनों में से दोहन करके कुछ भाग यहाँ दिया जा रहा है।

(१) ४७ घातिकर्मों की घातक ४७ शक्तियाँ

अनेकांतस्वरूप आत्मा अनंत शक्ति के वैभव से परिपूर्ण है। उसकी महत्ता लाकर ज्ञान जहाँ अंतर्मुख होकर परिणमित हुआ, वहाँ उस ज्ञान के निर्मल परिणमन के साथ ही दूसरी अनंत शक्तियाँ भी निर्मल परिणमनपूर्वक उल्लसित होती हैं, उसका अलौकिक वर्णन अमृतचंद्रस्वामी ने ४७ शक्तियाँ बतलाकर किया है। यह ४७ शक्तियाँ घातिकर्मों की घातक हैं। घातिकर्मों की प्रकृतियाँ भी ४७ हैं। ४७ शक्तियों द्वारा अनंतशक्ति स्वरूप आत्मा को जो पहिचाने, उसके ४७ घातिकर्मों का नाश होकर केवलज्ञानादि अनंत शक्तियाँ खिल जाती हैं। (—प्रवचनसार में नय भी ४७ हैं, और उपादान-निमित्त के दोहे भी ४७ हैं।)

(२) चैतन्य जीवन

सर्वप्रथम तो ज्ञान के साथ जीवत्व भी है। सबसे पहला चैतन्य जीवन बतलाया। ज्ञान के साथ चैतन्य प्राण वर्त रहे हैं; ऐसे प्राणों को धारण करके आत्मा जी रहा है। ऐसी शक्ति प्रत्येक आत्मा में है। उस शक्ति की प्रतीति करने से पर्याय में वह प्रगट परिणमित होती है, इसलिये सच्चा चैतन्य जीवन प्रगट होता है। चैतन्य जीवन को भूलकर अनादि से जड़ प्राणों में अपना जीवन मान रहा है, उसे समझाते हैं कि भाई, तेरा जीवन जड़ से नहीं है, तेरा जीवन तो तेरे चैतन्य प्राण से ही है।

(३) नि:शंक श्रद्धारूपी वि-शल्या

जिसप्रकार 'विशल्या' के आते ही लक्ष्मण को लगी हुई रावण की शक्ति भाग गई और लक्ष्मणजी अपनी शक्ति सहित जागृत हुए; उसीप्रकार आत्मा अनादि से निजशक्तियों को भूला है और मोहशक्ति से बेसुध हुआ है, परंतु जहाँ शल्य से विरहित ऐसी नि:शल्य-नि:शंक श्रद्धारूप सम्यक्त्व शक्ति जागृत हुई, वहाँ मोहशक्तियाँ भाग गईं और चैतन्यलक्षी भगवान आत्मा अपनी अनंत शक्तियों के सम्यक् परिणमन से जाग उठा। उसके सामने अब मोह की शक्ति नहीं टिक सकती।

(४) चैतन्य का दरबार

आत्मा के अंतर में विशाल चैतन्य दरबार भरा है, उसमें अनंत वैभव सम्पन्न अनंत शक्तियाँ शोभायमान हैं। अंतर्दृष्टि के द्वार से जहाँ ऐसे चैतन्य दरबार में प्रविष्ट हुआ, वहाँ तो अनंतगुण-सम्पन्न आत्म प्रभु के साक्षात्कार से परमानंद का अनुभव हुआ। ऐसा अनुभव करने के लिये हे जीव! सम्यग्श्रद्धा की चिंगारी द्वारा अपनी चैतन्यशक्ति को प्रज्वलित कर और उस प्रकाश द्वारा अपने अंतर में चैतन्य दरबार का अवलोकन कर!

(५) शक्ति की अस्ति में विकारी नास्ति

आचार्यदेव ने इन ४७ शक्तियों का अस्ति से वर्णन किया है, उसमें रागादि का नास्तिपना तो अनेकांत के बल से स्वयमेव आ जाता है। जिसप्रकार मांगलिक में नम: समयसाराय कहा, वहाँ उसके चार विशेषण अस्तिरूप बतलाये—स्वानुभूति से प्रकाशमान, भावस्वरूप, चित्स्वभाव तथा अन्य सर्व भावों का ज्ञाता—इसप्रकार अस्तिरूप चार विशेषणों से समयसार का स्वरूप बतलाया। वहाँ रागादि के अभाव का कथन नहीं किया है, तथापि उसमें उनके अभाव की बात आ ही गई है—ऐसा अनेकांत का बल है; उसीप्रकार यहाँ ४७ शक्तियों में जीवत्व, ज्ञान आदि शक्तियों का अस्तिरूप से वर्णन किया, उसमें रागादि का अभाव तो आ ही गया। ज्ञानादि शक्तियाँ रागादि परभाव की नास्तिरूप से ही प्रकाशित होती हैं; इसलिए शक्तियों की प्रतीति करते हुए भूतार्थ स्वभाव का ही आश्रय हो जाता है।

(६) सच्चा जीव

ज्ञान-दर्शन-सुख-सत्ता, यह आत्मा का जीवन है। अज्ञान या रागादि भाव, वह सचमुच जीव का जीवन नहीं है; जीव उसे कहा है जो अपने निर्मल ज्ञानादि भावों द्वारा जिये।

अकेले राग-द्वेष से या जड़ प्राणों से जिये, उसे जीव नहीं कहते। परमार्थ जीव-सच्चा जीव-शुद्ध जीव उसे कहते हैं जो शुद्ध जीवत्व द्वारा जिये। इसलिये सम्यग्दर्शन हुआ, तभी से शुद्ध जीवन जीनेवाला हुआ और उसी को शुद्ध जीव कहा, विकारी भाव को अथवा इन्द्रियवान इत्यादि को वास्तव में जीव नहीं कहते। वह सच्चा जीव नहीं है, जीव का सच्चा स्वरूप वह नहीं है। ज्ञान-दर्शन-सुख-सत्तारूप भावप्राण से जीवन जिये, वही सच्चा जीव है, वही जीव का सच्चा स्वरूप है।

(७) 'शक्ति' में चार भाव हैं, उदयभाव नहीं है

यह जीवत्व आदि शक्तियाँ त्रिकाल परमपारिणामिकभावरूप हैं; और उस परम स्वभाव के आश्रय से उसकी जो निर्मल परिणति प्रगट हो, उसे क्षायिक, क्षायोपशमिक अथवा औपशमिकभाव कहा जाता है। विकार औदयिकभावरूप है, उसे वास्तव में शक्ति की पर्याय नहीं कहते। शक्ति की पर्याय उसी को कहते हैं कि जो शक्ति के अवलंबन से निर्मल परिणमित हो। ज्ञानशक्ति की पर्याय सम्यग्ज्ञान को ही कहते हैं, अज्ञान को ज्ञानशक्ति की पर्याय कैसे कहा जायेगा? विकार, वह कहीं शक्ति का कार्य नहीं है; इसलिये शक्ति में सामान्य अपेक्षा से पारिणामिकभाव और विशेष अपेक्षा से तीन निर्मल भाव लागू पड़ते हैं, परंतु उदयभाव उसमें लागू नहीं होता।

(८) केवलज्ञानी जैसा शक्ति सम्पन्न

केवलज्ञानी भगवान को एक साथ अनंत शक्तियाँ हैं, उसीप्रकार प्रत्येक आत्मा में अनंत शक्तियाँ एकसाथ वर्तती हैं; उन शक्तियों की प्रतीति करने से उनका सम्यक्परिणमन होकर केवलज्ञानादि प्रगट होते हैं।

(९) चैतन्यशक्ति का रस आये तो उसमें एकाग्र हो

आत्मवस्तु में ज्ञान एवं अनंत शक्तियाँ हैं, उनके बिना आत्मा का स्वरूप सिद्ध नहीं होता। जिसे चैतन्यशक्ति का रस आये और उसका मूल्य भासित हो तो वह शक्तिमान ऐसे आत्मस्वभाव पर दृष्टि लगाकर उसमें एकाग्र हो। जिसे जिसका रस हो, वह उसमें एकाग्र होता है; उसीप्रकार जिसे चैतन्यशक्ति का रस है, वह अपनी चैतन्यशक्ति में एकाग्र होता है; और एकाग्र होने पर उपशम, क्षयोपशम या क्षायिकभाव प्रगट होता है तथा उदयभाव छूटता जाता है। चैतन्य शक्तियाँ पारिणामिकभावरूप हैं और उनकी निर्मल व्यक्तियाँ क्षायिक,

क्षायोपशमिक या औपशमिकभावरूप हैं; उनमें उदयभावरूप राग नहीं आता। जड़ के संबंध की तो बात ही कहाँ रही ? रागादिभाव वह शक्ति की जाति नहीं परंतु शक्ति से विरुद्ध भाव है।

(१०) असंख्य प्रदेश का चैतन्य राजा

चैतन्य भगवान असंख्य प्रदेशों का राजा है, वह अपने असंख्य प्रदेशों में शोभायमान है; असंख्य प्रदेश वह उसका स्वदेश है और उन स्वप्रदेशों में अनंत गुणोंरूपी अनंत प्रजा परस्पर मेलजोल से सहभावरूप से विद्यमान है। एक-एक गुण स्व-सामर्थ्यरूप वैभव से परिपूर्ण है।—ऐसे वैभव सम्पन्न असंख्य प्रदेशों का राजा, यह चैतन्य राजा है। उसकी महिमा अचिंत्य है। यह राजा अपनी स्वशक्ति में विराजित शोभित है।

(११) 'ज्ञान' कली में से केवलज्ञान खिलता है

'ज्ञान' अर्थात् जानना.. जानना.. जानना..; उस जानने में बीच में राग-द्वेष नहीं आते, इसलिये ज्ञान वीतरागभावरूप ही रहता है; उस ज्ञान में शांति-सुख-आनन्द भरा है। असंख्य प्रदेश उस ज्ञान का घर है, ज्ञान के घर में शरीर-रोगादि कुछ भी प्रविष्ट नहीं हो जाता। जो ज्ञानभावरूप परिणमित हो और रागादिभावरूप परिणमित न हो उसी को ज्ञान कहते हैं। राग कहीं ज्ञान का कार्य नहीं है, ज्ञान का कार्य ज्ञान ही होता है। कमल की कली में से कहीं निबोली नहीं खिलती; उसीप्रकार चैतन्य-कमल की कली में से तो केवलज्ञानादि चैतन्य कमल ही खिलते हैं, उस काली में से कहीं रागादि कड़वे भाव नहीं खिलते। प्रत्येक शक्ति निजस्वभाव के सामर्थ्यरूप से वर्त रही है, उसकी प्रतीति में समयसार की प्रसिद्धि है। समयसार अर्थात् शुद्धात्मा, उसकी प्रतीति करने से उसकी शक्तियाँ निर्मलरूप से व्यक्त होती हैं—प्रसिद्ध होती हैं।

(१२) ज्ञान में ही सुख

आत्मा 'सुख' शक्ति से भरपूर है; उसके ज्ञान के साथ सुख भी साथ ही वर्तता है। ज्ञान में आकुलता नहीं है। ज्ञान जहाँ ज्ञानरूप हुआ, वहाँ वह निराकुल हो गया, इसलिये निराकुलतारूप सुख का उसमें समावेश हो गया।—ऐसे ज्ञान के साथ रहनेवाले सुख के बदले कहीं अन्यत्र बाह्य साधन में सुख ढूँढ़ने जाये तो उस जीव को आत्म-गुणों की प्रतीति नहीं है; उसे एकान्तवादी पशु कहा है। ज्ञान में सुख साथ ही है, ज्ञान से पृथक् अन्यत्र कहीं सुख नहीं है।

(१३) सम्राट भीख माँगता है, वह शर्म की बात है!

अरे जीव! तेरी शक्तियाँ तुझे भासित न हों और तू बाह्य में दूसरों के पास अपने गुणों की

(सुख आदि की) भीख माँगे, यह तो ऐसी बात है जैसे कोई सम्राट भीख माँगने निकले! अरे, तू अनंत अचिंत्य शक्तियों का सम्राट, सुख एवं ज्ञान के निधान से परिपूर्ण है, तू इन्द्रिय विषय—लक्ष्मी आदि जड़ के निकट अपना सुख माँगने जाये—यह कहीं तुझे शोभा देता है? और तू दूसरों से सुख माँगने जाये तो क्या कोई तुझे सुख देता है?—नहीं; वे कहते हैं कि तेरा सुख कहीं हमने लूट नहीं लिया है जो हम दे दें। जिसप्रकार तेरा सुख दूसरों के पास नहीं है, तुझमें ही है, उसीप्रकार तेरा सुखमार्ग-तेरे दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी दूसरे के पास नहीं है, तुझमें ही है और तेरे ही आश्रय से प्रगट होते हैं।

(१४) स्वशक्ति का विश्वास कर

अरे जीव! मेरा आनन्द मुझमें है, ऐसा विश्वास तो कर! तुझे जगत का विश्वास है, परंतु स्वयं अपना विश्वास नहीं है! संत स्वयं अनुभव करके आत्मा की शक्तियाँ बतलाते हैं, उन्हें तू स्वानुभव से जानकर प्रतीति में ले तो तेरा पर में भटकना मिट जाये और स्वशक्ति का सुख तुझे अनुभव में आये।

(१५) 'सुख' - उसमें दुःख का प्रवेश नहीं है

'सुख' वह आत्मा का प्रयोजन है। आत्मा में सुख शक्ति होने से आत्मा ही स्वयं सुखरूप होता है। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र यह तीनों सुखरूप हैं। मोक्ष और मोक्ष मार्ग सुखरूप है; आत्मा का धर्म सुखरूप है, दुःखरूप नहीं है। हे जीव! तेरी सुख शक्ति में से ही तुझे सुख प्राप्त होगा, अन्यत्र कहीं से तुझे सुख नहीं मिलेगा। तेरा स्वभाव सुख है, उसमें दुःख नहीं है; तेरा स्वभाव ज्ञान है, उसमें अज्ञान नहीं है।

तेरी सुख शक्ति ऐसी है कि जहाँ दुःख कभी प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए आत्मा में डुबकी लगाकर अपनी सुख शक्ति को उछाल। उछाल अर्थात् पर्याय में परिणमित कर, जिससे तुझे अपने सुख का प्रगट अनुभव होगा। तू जहाँ है, वहीं तेरा सुख है, इन्द्रपद में भी जो सुख नहीं है, वह सुख आत्मा में है। आत्मा की जो सुख परिणति प्रगट हुई, वह सदाकाल आत्मा के साथ रहती है। चैतन्यशक्ति का रस अद्भुत है; उसकी शांति अपार है।

(१६) वचनातीत

आत्मा के प्रदेश असंख्य, उसमें अनंत गुण; जहाँ एक गुण है, वहीं अनंत गुण हैं। वे अनंत गुण शब्दों द्वारा नहीं कहे जा सकते, क्योंकि शब्द तो संख्यात ही हैं और गुण अनंत हैं;

परंतु आत्मा के स्वानुभव में सर्व गुणों का वेदन एक साथ हो जाता है। चैतन्य से भेंट होने पर अनंत गुणों के रस का पान होता है। ऐसा अनुभव ही अनेकांत का फल है। वह अनुभव वचन में और विकल्प में पूरा नहीं आता अर्थात् वचन या विकल्प द्वारा वह अनुभव नहीं होता, शक्ति स्वभाव की सन्मुखता से ही वह अनुभव होता है; उसका आनंद वचनातीत है। वचन में तो मात्र संकेत आता है।

(१७) तद्रूप परिणमन पूर्वक प्रतीति

पराङ्मुख रहकर आत्मशक्ति की प्रतीति नहीं हो सकती। आत्मशक्ति की प्रतीति आत्मसन्मुखता द्वारा ही होती है। आत्मसन्मुख होने से पर्याय में शक्ति का निर्मल परिणमन होता है; इसलिये पर्याय में निर्मल परिणमनपूर्वक ही आत्म शक्तियों की प्रतीति होती है। पर्याय में अकेली मलिनता रहकर निर्मल शक्ति की सच्ची प्रतीति नहीं हो सकती। अज्ञानरूप रहकर ज्ञानशक्ति की प्रतीति नहीं होती, परंतु ज्ञानरूप होकर ही ज्ञान शक्ति की प्रतीति होती है; अकेले दुःखरूप रहकर सुख-शक्ति की प्रतीति नहीं होती, परंतु ज्ञानरूप रहकर ही ज्ञानशक्ति की प्रतीति होती है; अकेले दुःखरूप रहकर सुख शक्ति की प्रतीति नहीं होती परंतु सुख की अनुभूति पूर्वक सुख शक्ति की प्रतीति होती है।—इसप्रकार आत्मगुणों में तद्रूप परिणमित होने पर ही गुण की प्रतीति होती है अर्थात् शुद्ध परिणति द्वारा ही सम्पूर्ण शुद्धात्मा प्रतीति में आता है; अकेले विकार में तद्रूप रहकर शुद्धात्मा की या उसकी शक्ति की प्रतीति नहीं हो सकती।

(१८) 'बल का वृक्ष'

आत्मा स्ववीर्य से अपने अनंत गुणों की निर्मल-पर्यायों को उत्पन्न करता है। अनंत गुणों की निर्मल शाखाओं को उत्पन्न करे, ऐसे बल का वृक्ष आत्मा है। चैतन्य का वीर्य वृक्ष केवलज्ञान-केवलदर्शन-अनंत सुख-अनंत वीर्य आदि उत्तम फलों को उत्पन्न करता है। चैतन्यवीर्य का वृक्ष अनंत गुणों की निर्मल शाखाओं-पर्यायों की स्वाधीनरूप से रचना करता है—ऐसा उसका सामर्थ्य है। उसकी स्वसन्मुख प्रतीति करने से मोक्ष वीर्य प्रगट होता है अर्थात् निज सामर्थ्य से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्यायों की रचना होती है। जीव का ऐसा स्वभाव है।

(१९) निर्मल शक्ति सम्पन्न आत्मा ही सच्चा आत्मा है

यहाँ विशेषता यह बतलाना है कि निर्मल-पर्यायों की रचना में ही आत्म शक्तियाँ कारणरूप हैं और निर्मल पर्यायें ही शक्ति का कार्य है। जो विकार है, उसकी रचना में

आत्मशक्ति सचमुच कारणरूप नहीं है, और विकार पर्याय वह वास्तव में आत्म शक्ति का कार्य नहीं है। इसलिये जो निर्मल पर्यायरूप परिणमित हुई, उस शक्ति को ही निश्चय आत्मा (परमार्थ आत्मा) कहा और मलिन पर्यायरूप परिणमन को व्यवहार आत्मा कहा; यानी उसे सचमुच आत्मा नहीं कहा। इसप्रकार व्यवहार के निषेध और निश्चय के स्वीकारपूर्वक ही शुद्ध आत्मशक्ति प्रतीति में आती है। ऐसा अनेकांत, वह जैननीति है। ऐसी जैननीति को सम्यग्दृष्टि जीव ही जानते हैं।

(२०) शक्तियों के ज्ञान का फल : शुद्धात्म प्रसिद्धि

मंद राग, वह चैतन्य की वीर्यशक्ति का सच्चा कार्य नहीं है; चैतन्य की वीर्यशक्ति का सच्चा कार्य तो वीतरागी निर्मल पर्याय की रचना करना है, इसलिये आत्मा शुभराग को रचे या शुभराग द्वारा आत्मा की निर्मल पर्याय की रचना हो, यह बात नहीं रहती। राग की रचना करे, उसे आत्मा नहीं कहते। निर्मल पर्याय को रचे अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित हो, उसी को शुद्ध आत्मा कहते हैं और उसकी प्रसिद्धि ही इन शक्तियों के ज्ञान का फल है।

(२१) उत्तम आत्मा.... उत्तम शरीर

प्रभो, जगत में जो उत्कृष्ट आत्म शक्तियाँ हैं, वे सब आपको प्रगट हो गई हैं; आपको पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण शांति प्रगट हुई, वहाँ जगत के शांतरस वाले समस्त परमाणु भी आपके पास आकर शांत-शरीररूप परिणमित हो गये। देखो तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध। आत्मा का कोई अद्‌भुत स्वभाव है—उसे जानने पर ज्ञानी को आनंद होता है और अलौकिक महिमा आती है। सर्वज्ञता आदि उत्कृष्ट शक्तियाँ जिस आत्मा को प्रगट हुईं, वहाँ जगत के सर्व उत्कृष्ट परमाणु उस आत्मा के शरीररूप परिणमित हुए, कोई परमाणु शेष न रहे। जितनी उत्कृष्ट चैतन्य शक्तियाँ थी, वे आत्मा में प्रगट हो गईं और जितने उत्कृष्ट परमाणु थे, वे शरीररूप रचे गये।—ऐसा ही लोकोत्तर मेल है। चैतन्य का परिणमन उत्कृष्ट हुआ, वहाँ जगत के रजकण भी उत्कृष्ट शरीर पर्यायरूप परिणमित हुए।

(२२) शक्ति की प्रतीति द्वारा साधक की परिणति उल्लसित होती है और केवलज्ञान को बुलाती है।

जिसप्रकार खोया हुआ प्यारा पुत्र आ जाने पर उसे देखते ही माता के हृदय में वात्सल्य के कारण दूध उभरने लगता है; उसीप्रकार आत्म-शक्तियों को दर्शानेवाली भगवान की वाणी सुनते

ही मुमुक्षु के हृदय में आत्मशक्ति के अंकुर जागृत होते हैं... परिणति में आनंद का दूध उभराता है। अरे, आत्मशक्ति की ऐसी बात सुनने से किसे पर्याय में निर्मलता उल्लसित न होगी ? जिसने ऐसी शक्तियोंवाले आत्मा को प्रतीति में लिया, उसने केवलज्ञान को अपने आँगन में बुलाया। शक्ति की प्रतीति की, वहाँ भान हुआ कि हमारे आत्मा में केवलज्ञान ही शोभा देता है... अल्पज्ञता या विकार हमारे आत्मा में शोभा नहीं देते... केवलज्ञान का ही आदर है, इसलिये उसने केवलज्ञान को अपने घर बुलाया; वह 'सर्वज्ञपुत्र' हुआ... वह जिनेश्वरदेव का लघुनंदन हुआ।

(२३) अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर

आत्मा अनंत शक्तिसम्पन्न चैतन्यरत्नाकर है। जिसप्रकार समुद्र में अनेक रत्न होने से उसे 'रत्नाकर' कहा जाता है; उसीप्रकार आत्मा की प्रत्येक शक्ति, वह अचिंत्य महिमावंत गुणरत्न है, ऐसे अनंत चैतन्यरत्न इस आत्मा में हैं; इसलिये आत्मा अद्‌भुत निधिवाला चैतन्यरत्नाकर है। पानी के समुद्र में रत्न तो संख्यात या अधिक से अधिक असंख्यात होते हैं, परंतु इस चैतन्यसमुद्र में तो अनंत रत्न हैं। जिसका एक-एक रत्न अपार महिमावंत है, ऐसे इस अद्‌भुत चैतन्यरत्नाकर की महिमा की क्या बात ?—इसकी प्रभुता की क्या बात ? अहा ! मुझमें ही ऐसे निधान भरे हैं, फिर पराश्रय-पराधीनता मैं क्यों करूँ ? अपने चैतन्यनिधान की महत्ता भासित होने पर सारे जगत की महत्ता उड़ जाती है और स्ववीर्य का वेग आत्मोन्मुख होकर आत्मा की प्रभुता को साधता है।

(२४) सिद्ध की और तेरी प्रभुता में कोई अंतर नहीं है

हे जीव ! सिद्ध भगवंतों को अखंड प्रतापवान स्वतंत्रता से सुशोभित जैसी प्रभुता प्रगट हुई है, वैसी ही प्रभुता तेरे आत्मा में है। तेरे आत्मा की स्वतंत्र प्रभुता के प्रताप को कोई खंडित नहीं कर सकता। अनादि से तूने ही अपनी प्रभुता को भूलकर उसका खंडन किया है; अब अपने आत्मस्वभाव की प्रभुता को प्रतीति में लेकर उसका अवलंबन कर, उससे तेरी पामरता दूर हो जायेगी और अखंड प्रतावंत चैतन्य प्रभुता से तेरा आत्मा स्वतंत्ररूप से शोभायमान हो उठेगा... तू भी अनंत सिद्धों की बस्ती में जाकर सादि-अनंत रहेगा।

(२५) सम्यग्दर्शन में प्रभुता

सम्यग्दर्शन होते ही आत्मा में प्रभुता का अंश प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन रहित जीव, शक्तिरूप से प्रभु होने पर भी पर्याय में पामर है। जो जीव सम्यग्दर्शन द्वारा आत्मा की प्रभुता को

पहिचानता है, वह जीव अल्प काल में 'प्रभु' हो जाता है। स्वतंत्रता से शोभायमान ऐसी प्रभुता के अखंड प्रताप को कोई तोड़ नहीं सकता। सम्यग्दर्शन होते ही आत्मा की प्रभुता प्रगट होने लगी। रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन को भी देव कहा है।

(२६) वीतरागी वीर की सच्ची वीरता

वीर्यवान आत्मा की सच्ची वीरता तो इसमें है कि स्वयं अपने शांतरस की रचना करे... ऐसी वीतरागी वीरता द्वारा अपनी प्रभुता को प्रगट करे, वही सच्चा वीर है। विकार द्वारा स्वरूप का घात करे, उसे वीर कैसे कहा जाये ? अपने निर्मल स्वरूप की रचना न कर सके, उसे वीर कौन कहेगा ? राग को तोड़कर अपने निर्मल स्वभाव को रचे, अपनी प्रभुता को प्रगट करे, वही सच्चा वीर है। ऐसी वीरता, वह आत्मा की वीर्यशक्ति का सच्चा कार्य है और यही अद्‌भुत महिमा है। वीतरागी वीर की यह सच्ची वीरता है कि निर्मल वीतरागभाव की रचना करे।

(२७) आनंद में आजा....

जीव ने जहाँ इस चैतन्य चक्रवर्ती के अद्‌भुत निधान को जाना, वहाँ चक्रवर्ती पद के चौदह निधानों का आदर भी क्षणमात्र में छूट जाता है। अरे, एक बार आनंद में आजा कि— अहो, ऐसे निधान का स्वामी मैं हूँ ! स्वभाव की शक्ति का उल्लास लाकर एकबार प्रसन्न हो... प्रसन्न होकर स्वशक्ति को संभालते ही तुझे अपूर्व आनंद होगा। यह जो आनंद आया-ऐसे ही परिपूर्ण आनंद से मेरा संपूर्ण तत्त्व भरा हुआ है—ऐसा स्वसंवेदन से प्रतीति में आता है और समस्त राग का स्वामित्व उड़ जाता है। अहा, जीव ! संतों ने तुझे तेरा अचिंत्य भंडार बतलाया... उसे देखकर अब तू आनंद में आजा।

(२८) सिंह जागा और हिरन भागे

जिसे अपनी प्रभुता का भान नहीं है—ऐसा पामर जीव राग के एक कण को भी नहीं छोड़ सकता; अपनी प्रभुता को जाननेवाला ज्ञानी-धर्मात्मा तो क्षणमात्र में सर्व राग को छोड़ता है। एक समय में साधक को ज्ञान और राग दोनों साथ हैं, तथापि उनमें ज्ञान का तो ज्ञानी को स्वरूप से अनुभव होता है और राग का स्वभाव से पररूप अनुभव होता है।—इसप्रकार एक ही पर्याय में वर्तते हुए दो भावों के बीच भी धर्मी को भेदज्ञान वर्तता है। अपनी प्रभुता को संभालकर जो वीर जागृत हुआ उसके समक्ष विकार शत्रु खड़े नहीं रह सकते... चैतन्य-सिंह अपनी वीरता से जागा, वहाँ विकाररूपी हिरन भाग खड़े हुए।

(२९) चैतन्यराजा की प्रभुता में मलिनता नहीं है।

'चैतन्य हीरा' जिसके हाथ में आ गया, वह दुर्गंधित ऐसे विकार को क्यों पकड़ेगा? यह चैतन्यराजा निजगुणों में राजता है—शोभायमान होता है-मस्त रहता है; उसमें मलिनता कैसी?—विकार कैसा? जिसप्रकार 'राजा' की प्रभुता कोई खंडित नहीं कर सकता, उसीप्रकार चैतन्यराजा की प्रभुता को कोई नष्ट नहीं कर सकता—ऐसी अपनी प्रभुता से वह स्वतंत्ररूप से सुशोभित होता है। पराश्रय में—पराधीनता में शोभा नहीं है, स्वाधीनता में और स्वाश्रय में ही शोभा है। स्वभावशक्ति की प्रभुता को जानकर जिस पर्याय ने उसका आश्रय लिया, वह पर्याय भी स्वाधीन प्रभुता से सुशोभित हो उठती है। चैतन्यराजा की ऐसी प्रभुता का विकास हुआ, उसमें मलिनता नहीं है।

(३०) ज्ञान द्वारा 'ज्ञायक' को ज्ञान

ज्ञान है, वह ज्ञात होने योग्य पर ज्ञेयों से भिन्न है, परंतु ज्ञाता से भिन्न नहीं है। ज्ञाता ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव, उसके साथ ज्ञान की एकता-तन्मयता, सो धर्म है, उसमें शांति है; उसमें स्व-पुरुषार्थ है, उसमें आत्मा की प्रभुता है; रागादि में तथा पर में ज्ञान का एकत्व मानना, वह तो पामरता है, उसमें अशांति है। भाई, तू ज्ञाता को जान; ज्ञान द्वारा जिसका ज्ञान है, उसे जान; अर्थात् स्व-संवेदन से अपने को जान।

(३१) ज्ञान का विस्तार राग में नहीं है

स्वयं अपने को स्वसंवेदन से जानने पर रागादिभाव पृथक् रह जाते हैं; क्योंकि स्वभाव में वे रागादिभाव अभूतार्थ हैं, अर्थात् अभावरूप हैं। राग में आत्मा की प्रभुता नहीं है, ज्ञान में आत्मा की प्रभुता है। प्रभु का विस्तार अपने अनंत गुणों में है, परंतु प्रभु का विस्तार राग में नहीं है; इसलिये राग से पृथक् होकर अपनी प्रभुता को प्रतीति में ले... तो तेरे अनंत गुणों का परिणमन प्रभुता से सुशोभित हो उठेगा। उस प्रभुता में ज्ञान का विस्तार होगा और राग नष्ट हो जायेगा।

(३२) तू पर से चिपका है... ज्ञानप्रकाशी सूर्य में अंधकार नहीं है

भाई, परवस्तु कहीं तुझे चिपकती नहीं है, परंतु तू ही सामने जाकर पर से चिपकता है कि—'यह वस्तु मुझे रोकती है'—इसप्रकार तेरी अपनी विपरीतता से तू हैरान होता है; परवस्तु तुझे हैरान नहीं करती। अरे, तू ज्ञानप्रकाशी सूर्य... उसमें अज्ञान का अंधकार कैसा? उसमें

परद्रव्य कैसे ? जिसप्रकार सूर्य में अंधकार नहीं होता; सूर्य कभी ऐसा कहे कि मुझे अंधकार हैरान कर रहा है... तो कौन मानेगा ? जहाँ सूर्य हो, वहाँ अंधकार नहीं होता; उसीप्रकार तू चैतन्यप्रकाशी सूर्य जगत का प्रकाशक ज्ञानभानु... तू ऐसा कहे कि मुझे अंधे कर्म आदि परद्रव्य हैरान करते हैं तो कौन मानेगा ? भाई, तेरे चैतन्य के प्रकाश में परद्रव्य कभी प्रविष्ट नहीं होते। चैतन्यप्रकाश फैला, वहाँ परद्रव्य तो बाहर-दूर ही रहते हैं। अहा, तेरे चैतन्यस्वरूप में प्रवेश करने से मन भी जहाँ मर जाता है (मन का भी अवलंबन छूट जाता है), वहाँ कर्मों की क्या गति ? कर्म की या किसी की भी शक्ति नहीं है कि इस चैतन्यप्रभुता के प्रताप को खंडित करे। ऐसे अखंडित प्रताप से आत्मा की प्रभुता सुशोभित हो रही है।

(३३) सम्यग्दृष्टि की परिणति

जिसप्रकार सूर्य में अंधकार नहीं है, उसीप्रकार प्रभुता में पामरता नहीं है। सम्यग्दृष्टि की निर्मलपरिणति में राग का या संयोग का अभाव वर्तता है। सम्यग्दृष्टि को राग हो, वहाँ अज्ञानी मात्र राग को ही देखता है और सम्यग्दृष्टि राग करता हो, ऐसा उसे लगता है, परंतु उसी समय राग रहित जो निर्मल परिणमन सम्यग्दृष्टि को वर्त रहा है, उसे अज्ञानी जान नहीं सकता। यदि उस निर्मल भाव को जाने तो उसे स्वभाव एवं राग के बीच का भेदज्ञान हो जाये।

(३४) चैतन्य व्यापारी के गोदाम का अच्छा माल

अनंत गुणों के वैभव से भरपूर यह चैतन्य व्यापारी निर्मल भावों का व्यापार करनेवाला है। मलिनभावों का व्यापारी वह नहीं है। चैतन्य के गोदाम में तो अनंत निर्मल गुणों का माल भरा है, परंतु चैतन्य के गोदाम में कहीं विकार नहीं है। यह चैतन्य व्यापारी अच्छे माल का ही व्यापार करनेवाला है, खराब या मिश्रणवाला माल उसके गोदाम में नहीं है, तथा चाहे जितना माल निकालने पर भी उसका भंडार कभी कम नहीं होता। ऐसे अटूट भंडारवाले आत्मस्वभाव को हे जीव ! तू जान।

(३५) मुमुक्षु की झनझनाहट

अहा, पुरुषार्थ की तैयारीवाला मुमुक्षु जीव तो स्वभाव की अनंतशक्ति का वर्णन सुनकर इसप्रकार उल्लसित होता है कि मैं झनझन करता हुआ अंतर की गहराई में उतरूँ और अपने अनंत गुणों का विकास करूँ... स्वभाव की गहराई मापने के लिये डुबकी लगाता है, वहाँ विकल्पों की रुचि नहीं रहती; विकल्प टूटकर ज्ञानस्वभाव की महिमा में लीन हो जाता

है।—इसप्रकार निजशक्ति की महिमा सुनकर मुमुक्षु की परिणति झनझनाहट करती अंतर्मुख होती है।

(३६) शूरवीर साधक

जिसप्रकार शूरवीर प्रतापी बालक सिंह से भी नहीं डरता; वह तो सिंह का मुँह पकड़कर कहता है कि—'खोल अपना मुँह, मुझे तेरे दाँत गिनने हैं!' उसीप्रकार चैतन्य की साधना करनेवाला शूरवीर-प्रतापी साधक कर्मरूपी सिंह से डरता नहीं है... जहाँ वह अपने स्वरूप में लीन होता है, वहाँ कर्म तो कहीं दूर भाग जाते हैं। 'क्या करें, कर्म हैरान करते हैं, प्रतिकूलता बहुत है;'—इसप्रकार जो डरपोक-कायर है, वह चैतन्य को नहीं साध सकता। चैतन्य को साधने के लिये जो अंतर में उतरा, उस शूरवीर को जगत में कोई रोक नहीं सकता, उसे किसी का भय नहीं होता।—इसप्रकार आत्मा की साधना करनेवाले साधक शूरवीर होते हैं, पुरुषार्थवान होते हैं; उन्हें अपनी अचिंत्य शक्ति का विश्वास है, इसलिये वे नि:शंक और निर्भय हैं।

(—शेष अगले अंक में)

स्वानुभूति

चैतन्यमूर्ति आत्मा सूक्ष्म अतीन्द्रिय वस्तु है; वह कोई इन्द्रियग्राह्य वस्तु नहीं है कि बाह्य से ज्ञात हो जाये। वह तो अंतर्मुख ज्ञान का विषय है। अतीन्द्रिय होने पर भी अंतर्मुख ज्ञान द्वारा वह स्वानुभव में आ सकता है। उस स्वानुभूति में एक साथ अनंत गुणों के निर्मल परिणमन का समावेश है।

यह स्वानुभूति-क्रिया अन्य कारकों से निरपेक्ष है; उसके छहों कारकों का अपने में ही समावेश होता है। अज्ञानभाव में भी कोई पर कारक नहीं थे; अज्ञान के समय भी जीव स्वयं ही अपने अज्ञानमय छह कारकरूप से परिणमित होता था और अब ज्ञानदशा में भी वह स्वतंत्ररूप से अपने छह कारकों से परिणमित होता है। स्वानुभूति में अपने शुद्ध आत्मतत्त्व के सिवा अन्य समस्त परभावों से अत्यंत निरपेक्ष है।

'निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है, और उस शुद्धरत्नत्रय का फल स्वात्मोपलब्धि है।'

(श्री नियमसार) (रत्नसंग्रह से)

संसार दुःख से छूटकर आत्मसुख का अनुभव करने के लिये आतुर शिष्य के

अंतर की पुकार

दुःख सागर से निकलकर सुखानुभव के लिये आतुर शिष्य कैसा होता है, उसकी जिज्ञासा कैसी होती है, उसके हृदय में प्रश्न कैसे उठते हैं ?—इन सबका सुंदर वर्णन यहाँ परमात्मप्रकाश की भूमिका में किया है। दुःख से थका हुआ वह शिष्य अपने परमात्मतत्त्व को जानने के लिये आतुर है। उसके लक्ष में आया है कि अपने परमात्मस्वरूप को जानने से ही मुझे आनंद का अनुभव होगा और मेरे भव-भव के दुःख मिट जायेंगे। इसलिये वह दूसरा सब कुछ भूलकर परमात्मतत्त्व को जानने के लिये उद्यमी हुआ है, उसी की धुन और आकांक्षा है।—ऐसे पिपासु जीव के लिये संतों ने परम आनंद की प्याऊ खोली है।

(कार्तिक शुक्ला दूज के प्रवचन से)

यहाँ दिवाली के इनाम में प्रभाकर भट्ट अर्थात् जिज्ञासु शिष्य माँगता है कि हे प्रभो! मुझे शुद्धात्मा की प्राप्ति हो और चैतन्य भंडार मिले, ऐसा उत्तम परमात्मतत्त्व का उपदेश दो। प्रभो! अनुग्रहपूर्वक ऐसा उपदेश दो कि मुझे अपने चैतन्य का उत्तम सुख प्राप्त हो! जिसप्रकार नूतन वर्ष के प्रारम्भ में लोग महापुरुष-धर्मात्मा का आशीर्वाद लेते हैं, उसीप्रकार यहाँ प्रभाकर भट्ट श्रीगुरु के निकट विनयपूर्वक आशीर्वाद माँगता है कि हे स्वामी! प्रसन्न होकर मुझे परमतत्त्व समझाओ... कि जिसे समझने से मुझे सुख का अनुभव हो। अभी तक संसार में भटकते हुए मैंने बहुत दुःख भोगे हैं, परंतु कहीं सुख नहीं मिला... मैंने किंचित् सुख प्राप्त नहीं किया। परमात्मतत्त्व को न जानने से मैं दुःखी हुआ... इसलिये हे स्वामी! अब कृपा करके आप मुझे परमात्मतत्त्व का उपदेश दो कि जिसे जानकर मैं सिद्ध सुख को प्राप्त करूँ और यह संसार दुःख दूर हो।

दुःख से छूटने के लिये हृदय से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! मुझे दूसरा कुछ नहीं

चाहिये, एक चैतन्यसुख की प्राप्ति किसप्रकार हो, वह बतलाइये। देखो, यह प्रभाकर भट्ट की पुकार!... प्रत्येक जिज्ञासु के अंतर में कैसी भावना होती है, उसकी यह बात है। संसार के पाप में या पुण्य में, नरक में या स्वर्ग में जिसे दु:ख का अनुभव होता हो, चैतन्य की समाधि-अनुभूति के सिवा अन्यत्र कहीं, किसी परभाव में या किसी संयोग में किंचित् सुख नहीं है, सुख तो चैतन्य की वीतरागी अनुभूति में ही है—ऐसा जिसके अंतर में भासित हुआ हो, उस जीव की जिज्ञासा है कि—हे प्रभो! मैं अपने परमात्मतत्त्व को जान सकूँ, ऐसा उपदेश मुझे दो।

जिसप्रकार पानी से बाहर पड़ी हुई मछली पानी के बिना तड़पती है, उसे कहीं चैन नहीं पड़ता, उसीप्रकार हे प्रभो! चैतन्य के निर्विकल्प सुखसमुद्र से बाहर संसार में सर्वत्र मैं दु:ख से तड़प रहा हूँ। चार गति में कहीं चैन नहीं है, स्वर्ग में भी चैन नहीं है; परमात्मतत्त्व में जो सुख भरा है, उसका मुझे कैसे अनुभव हो, वही मुझे समझना है। प्रभो! संसार में दूसरी कोई आकांक्षा नहीं है... चैतन्यसुख के सिवा दूसरा कुछ मैं नहीं चाहता। ऐसी अंतर की पुकार करनेवाले शिष्य को संत परमात्मतत्त्व समझाते हैं और वह तुरंत समझ जाता है। उसे ऐसा भासित हुआ है कि अरे! मैंने अनंत काल दु:ख सहन किये, परंतु अपने आत्मा के सुख का उपाय एक क्षण भी नहीं किया। सुख के उपाय का सेवन किये बिना अनंत काल दु:ख के समुद्र में ही डूबा रहा। अब इस दु:खसागर से पार होकर आत्मिक सुख की प्राप्ति हो, उसका उपाय क्या? उसे जानकर उसी का सेवन करने की उत्कंठा है... एक ही धुन है, एक ही जिज्ञासा है। जिस परमात्मस्वभाव को जाने बिना मैं संसार में भटका और जिसकी प्राप्ति से मेरा भ्रमण मिटे, ऐसा परमात्मस्वभाव मुझे बताओ!

देखो, यह प्रथम सम्यक्श्रद्धा की बात है। भाई! तुझे मोक्ष की लगन हो तो पहले अपने आँगन में सम्यक्श्रद्धा का मंडप लगा। जहाँ सम्यक्श्रद्धा हुई, वहाँ मोक्षपरिणति प्रगट होगी ही। सम्यक्श्रद्धा में से परम आनंद के फव्वारे छूटते हैं।

आत्मज्ञान के सिवा जगत में कुछ भी सार नहीं है। भरत जैसे चक्रवर्ती या इन्द्र शुद्धात्मा को ही सार समझकर, भगवान के निकट विनय से उसी का स्वरूप पूछते हैं और बहुमानपूर्वक सुनते हैं। प्रभो! जगत में सर्वोत्तम और आदरणीय जो शुद्धात्मा है, वह कैसा है? स्वयं को उसकी प्रतीति होने पर भी भगवान के निकट जाकर पुन: पुन: आदरपूर्वक उसका श्रवण करते हैं। यहाँ प्रभाकर भट्ट ने यह बात पूछी है। देखो, शुद्धात्मा के जिज्ञासु के लिये भरत चक्रवर्ती का

उत्कृष्ट उदाहरण दिया है। जिसप्रकार भगवान ऋषभदेव की सभा में भरत चक्रवर्ती ने शुद्धात्मा का स्वरूप पूछा था, उसीप्रकार यहाँ प्रभाकर भट्ट, योगीन्दुदेव से विनयपूर्वक वही बात पूछता है। शुद्धात्मा की आराधनारूप रत्नत्रय जिन्हें प्रिय है, ऐसे जीव, ज्ञानी के निकट उसी के प्रश्न पूछते हैं। वाह! श्रोता ऐसा है कि जिसे आत्मा प्रिय में प्रिय है, आत्मा के रत्नत्रय जिसे प्रिय हैं, व्यवहार में पंचपरमेष्ठी की भक्ति प्रिय है; इसके अतिरिक्त संसार में अन्य कुछ भी जिसे प्रिय नहीं है; जो चैतन्य के वीतराग-निर्विकल्प आनंदरस के प्यासे हैं, जिन्हें राग की या पुण्य की पिपासा नहीं है। प्रवचनसार में कहते हैं कि परमानंद के पिपासु भव्य जीवों के लिये यह टीका रची जा रही है। देखो तो सही, संतों ने तो परम आनंद की प्याऊ खोल दी है! जिसप्रकार ग्रीष्म ऋतु में तृषातुर लोगों के लिये ठंडे पानी की प्याऊ खोली जाती है और वहाँ प्यासे मनुष्य आकर प्रेम से ठंडा जल पीते हैं और उनका हृदय तृप्त होता है; उसीप्रकार संसार भ्रमण भयंकर गर्मी में भटक-भटककर थके हुए जीवों के लिये भगवान के समवसरण में तथा संतों की छाया में चैतन्य के परम वीतरागी परमानंदरस की प्याऊ खुली है, वहाँ परमानंद के पिपासु भव्य जीव जिज्ञासापूर्वक-प्रेम से आकर शुद्धात्मा के अनुभवरूप अमृतपान करके तृप्त होते हैं। अरे, कहाँ नववें ग्रैवेयक से लेकर नरक-निगोद तक की चार गतियों के दुःखों का दावानल! और कहाँ यह चैतन्य के अनुभवरूप सुख के वेदन की शांति!! अरे, चैतन्य के परम आनंद के अनुभव बिना सब कुछ दुःखरूप लगता है। वहाँ से भयभीत होकर जो चैतन्य सुख के लिये झूरते हैं, वे जीव शुद्धात्मानुभव की ओर जाते हैं। जिसप्रकार लोग बड़े साँप से भयभीत होकर भागते हैं, उसीप्रकार धर्मात्मा-मुमुक्षु संसार की चारों गतियों के भय से भयभीत होकर वहाँ से भागे और चैतन्य की शरण में आये हैं। जगत में यह एक चैतन्य ही निर्भय स्थान है, वही चार गतियों के दुःख से छुड़ानेवाला और परम आनन्द को देनेवाला है।

[मुमुक्षु को सब चिन्ता छोड़कर आत्मा की मस्ती में मस्त रहना चाहिये।]

बंध और मोक्ष

मोह-राग-द्वेष, वह बंध का कारण है; मोहादि-रहित शुद्ध ज्ञप्ति क्रिया, वह मोक्ष का कारण है। बंध का और बंध के कारणों का, मोक्ष का और मोक्ष के कारणों का यथार्थ ज्ञान होने से सम्यग्ज्ञान के मार्ग की प्रसिद्धि होती है... वह आत्मा मोक्ष की ओर जाता है और बंध से विमुख होता है।

यह ज्ञानस्वरूप आत्मा अनादि से संसार में भटक रहा है; संसार में भटक रहा है अर्थात् मोहादि दु:खरूप परभाव में परिणमन कर रहा है; उस परभाव से उसके ज्ञान-सुख आदि ढँक गये हैं—बँध गये हैं—वही बंधन है; उस बंधनभाव से कैसे छुटकारा हो और आत्मा अपने स्वाभाविक ज्ञान एवं सुखरूप कैसे परिणमित हो, वह बात आचार्यदेव बतलाते हैं।

मोह एवं राग-द्वेष परिणाम, वह भावबंध है और मोह-राग-द्वेष के अभावरूप जो अत्यंत निर्मलभाव, वह परम संवर है; तथा वही भावमोक्ष है। भाव में जो मोहादि का बंधन था, वह छूट गया, इसलिये भावमोक्ष हुआ; और ऐसा भावमोक्ष होने से द्रव्यकर्म भी छूट जाते हैं, उसका नाम द्रव्यमोक्ष है।

तुझे बंधन काहे का ?—कि मोह के साथ एकाकार तेरे भाव का; किसी दूसरे ने तुझे बंधन नहीं किया है। अपनी क्रिया से ही तू बँधा है और अपनी क्रिया से ही तू छूट सकता है। कौनसी क्रिया ? जीव ज्ञानस्वरूप है, इसलिये ज्ञप्ति ही उसकी क्रिया है। वह ज्ञप्ति क्रिया जब मोह और राग-द्वेष के साथ एकाकार होकर अशुद्धभावरूप से परिणमित होती है, तब उस अशुद्धभावरूप भावबंध द्वारा जीव बँधता है; परंतु ज्ञानी को भेदज्ञान के बल द्वारा ज्ञप्ति-क्रिया में से मोह-राग-द्वेष की हानि होती है, इसलिये ज्ञप्तिक्रिया शुद्धभावरूप से वर्तती है; उस शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया के बल द्वारा मोह को क्षीण करके, अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रगट करता है। ऐसे केवलज्ञान में भावकर्म का अभाव है, इसलिये वह भाव मोक्षस्वरूप है। जहाँ मोह का नाश हुआ और ज्ञप्तिक्रिया परिपूर्ण अक्रमरूप से खिल उठी, वहाँ सर्व कर्मों का अत्यंत संवर होता है।—ऐसा संवर, वह मोक्ष का कारण है।

ज्ञानस्वरूप आत्मा की ज्ञप्तिक्रिया जब तक क्रमश: प्रवर्तती थी, तब तक वह बँधी हुई थी, अत्यंत ज्ञेयों को एक साथ नहीं जान सकती थी परंतु क्रमानुसार अमुक ज्ञेयों को ही रुक-रुककर जानती थी। ऐसी खंड-खंडरूप ज्ञप्तिक्रिया को भावबंध कहा है। स्वावलंबन के बल

से मोह का अभाव होने के पश्चात् अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान कला से परिपूर्ण ज्ञप्तिक्रिया खिल उठती है, फिर उसे कोई प्रतिबंध नहीं रहता, उसका नाम भाव मोक्ष है।

अभी तो जिन्हें रागक्रिया और ज्ञानक्रिया—इन दोनों की भिन्नता की प्रतीति भी न हो, अरे! जड़ की और आत्मा की क्रिया की भिन्नता का भान भी न हो, वे तो अकेले बंधभाव में ही वर्तते हुए मोक्ष का स्वरूप भी नहीं जानते, तब फिर मोक्ष का साधन तो कहाँ से करेंगे? अंतरस्वभाव का अनुसरण करके होनेवाली को ज्ञानक्रिया, वह मोक्ष का साधन है। मोक्ष का साधन किसी शुभ-अशुभ राग की क्रिया का या शरीर की क्रियाका अवलंबन नहीं करता। भाई, अपने ज्ञान और आनंद के मुँदे हुए भाव को कैसे विकसित करना, उसकी यह बात है। अपने स्वभाव का अनुसरण करने से ही ज्ञान-आनंद का विकास हो जायेगा... इसका नाम भावमोक्ष है। बारहवें गुणस्थान तक ज्ञानादि में अभी जितना प्रतिबंध है, उतना भावबंध है; परंतु वहाँ मोह का अत्यंत अभाव होने से शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया प्रतिक्षण विकसित हो रही है और अंतर्मुहूर्त में उसके पूर्ण सामर्थ्य का विकास हो जाने से उसमें कोई प्रतिबंध नहीं रहता, उसका नाम भावमोक्ष है। भावमोक्ष होने से द्रव्यकर्म भी छूट जाते हैं, वह द्रव्यमोक्ष है।

भाई, तेरी शुद्ध ज्ञप्तिक्रिया ही तेरे मोक्ष का हेतु है। मोह-राग-द्वेष का अभाव होकर केवलज्ञान हुआ, वहाँ भावमोक्ष हुआ। ऐसे केवलज्ञानी भगवंत चिदानंद के अतीन्द्रिय सुख के अनुभव से तृप्त-तृप्त वर्तते हैं, उन्हें कोई अतृप्ति नहीं है, कोई इच्छा नहीं है;—ऐसी भावमुक्ति हुई है, तथापि अभी जो पूर्वबद्ध अघातिकर्म शेष हैं, वे भी शुद्धस्वरूप अविचलित चेतनावृत्ति के कारण प्रतिक्षण अत्यंतरूप से झर जाते हैं। साधकदशा में भी जो शुद्ध चेतनावृत्ति है, वह निर्जरा का कारण है। प्रथम सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनंद के अंश का जो वेदन हुआ, उससे अनुमान हो गया था कि संपूर्ण आत्मा ऐसे परिपूर्ण आनंद से भरपूर है। केवली और सिद्धों का परिपूर्ण आनंद ऐसा होता है, उसकी भी तभी प्रतीति हुई। पश्चात् शुद्ध चेतनावृत्ति बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञान हुआ। फिर उस शुद्ध चेतनावृत्ति से ही शेष कर्मों की निर्जरा होकर अत्यंत मोक्ष होता है। केवली भगवान की चैतन्यवृत्ति शुद्धस्वरूप में ही स्थिर है, उसे कथंचित् ध्यान भी कहा जाता है और उस ध्यान को निर्जरा का हेतु कहा जाता है। मोक्ष का और मोक्ष के कारणों का, बंध का और बंध के कारणों का यथार्थ ज्ञान होने से सम्यग्ज्ञान के मार्ग की प्रसिद्धि होती है; पश्चात् वह आत्मा मोक्ष के कारणों का सेवन करता हुआ मोक्ष की ओर जाता है और बंधन के कारणों को तोड़ता हुआ बंधन से विमुख होता है।

[पंचास्तिकाय प्रवचनों से, कार्तिक कृष्णा-७]

विविध वचनामृत

[लेखांक-३]

[विविध-वचनामृत का यह विभाग प्रवचनों में से, शास्त्रों में से, तथा रात्रिचर्चा आदि से तैयार किया जाता है। —ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

(१०१) स्वभाव को ढूँढ़, संयोग को मत ढूँढ़!

त्रैकालिक तत्त्व की शांति बाह्य में ढूँढ़कर अज्ञानी आकुलता करते हैं, परंतु व्यवहार और बाह्य साधन तो स्वयमेव होते हैं। बाह्य साधन ढूँढ़ने में लगा रहे और अंतर का आश्रय न करे, उसे धर्म नहीं होता। बाह्य सामग्री स्वयमेव उसके कारण से होती है; जीव उसे उपलब्ध नहीं करता। बाह्य वस्तु आत्मा के राग के आधीन नहीं है और बाह्य साधनों के कारण राग नहीं होता। भूमिकानुसार अशुभराग दूर होकर शुभराग होता है, परंतु अपने राग से मैं बाह्य संयोग प्राप्त करता हूँ—ऐसी एकत्वबुद्धि नहीं करनी चाहिये। शुभराग, वह चारित्र का विकार है, क्षेत्रांतर वह प्रदेशत्व की क्रिया है। एक के कारण दूसरे का नहीं होता, इच्छा के आधीन गमन नहीं है और शरीर की क्रिया तो बिलकुल भिन्न ही है। कर्म के या शरीर के आधीन तो आत्मा नहीं है, परंतु इच्छा के आधीन भी आत्मा का गमन नहीं है और शरीर की क्रिया भी इच्छा के आधीन नहीं है। दूसरे तत्त्वों से तो आत्मा में कुछ नहीं होता और अपने में भी राग के कारण धर्म नहीं होता। अज्ञानी अपने स्वभाव को नहीं ढूँढ़ता और बाह्य पदार्थों को ढूँढ़ता है। यदि स्वभाव को ढूँढ़े तो निमित्त भी स्वयमेव होता ही है, उसे ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता। हाथ हिले, वहाँ धर्मास्ति को ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता।

(१०२) 'सिद्धाः सिद्धि मम दिसन्तु'

हे सिद्ध भगवंतों! मुझे अब शीघ्र सिद्धि प्रदान करो!

(१०३) तीन प्रकार के कर्म

कर्म तीन प्रकार के हैं:—(१) शुद्धकर्म, (२) विकारीकर्म और (३) जड़कर्म।

आत्मा के रागादि रहित ज्ञातास्वभाव के परिणाम, वह आत्मा का शुद्धकर्म है। सम्यग्दर्शन, वह आत्मा का शुद्धकर्म है; वीतरागी दशा, वह आत्मा का शुद्धकर्म है। कर्म अर्थात् कर्तव्य, परिणाम, पर्याय। रागादि, वह परमार्थतः आत्मा का कर्म नहीं है, वह विकारी

कर्म है। जड़कर्म पुद्गलमय हैं, वे आत्मा से भिन्न हैं; उनमें आत्मा प्रवेश नहीं करता, परंतु परमाणु प्रवेश करते हैं; इसलिये उनका कर्ता आत्मा नहीं है। रागादि विकार को अपना वास्तविक कार्य माने, वह भी अज्ञान है; विकाररहित ज्ञानभावरूप से परिणमित हो, वह आत्मा का सच्चा कर्म है, वह धर्मकार्य है।

(१०४) धन्य हैं वे वैरागी!

भोगों को भोगे बिना ही तथा स्वाभाविक विषयों के प्रति त्याग परिणाम से समस्त विषयों को जिन्होंने अपनी अनंतबार की जूठन समान माना है और उन्हें छोड़कर चैतन्य की ओर झुके हैं—ऐसे परम पवित्र धर्म पुरुषों को बारम्बार नमस्कार हो।

(१०५) आत्मार्थ का मार्ग

हे जीव! यदि तुझे आत्मार्थ साधना हो तो तू जगत की दरकार छोड़ देना, क्योंकि आत्मार्थ का मार्ग जगत से भिन्न है। हे जीवो! इस अनंतानंत दुःखमय जन्म-मरण से छूटने के लिये तुम सत्वर जागो, परम पुरुषार्थ करके ज्ञानी के समागम से आत्मा को पहिचानो!

(१०६) गृहस्थ का कर्तव्य

(१) श्री जिनेन्द्रदेव की सेवा, (२) श्री सद्गुरु की उपासना, (३) श्री सत्शास्त्रों की स्वाध्याय, (४) संयम, (५) तप और (६) सुपात्रदान—यह छह कार्य गृहस्थों को प्रतिदिन करने योग्य हैं।

(१०७) मुझे सीखना है

* हे आमवृक्ष! मुझे तेरी भाँति मधुर और नम्रीभूत होना है... मुझे मधुरता और नम्रता सिखा।

* हे कमल पुष्प! मुझे तेरी भाँति परभावों से अलिप्त रहना है... मुझे अलिप्त रहना सिखा।

* हे पर्वत! मुझे तेरी भाँति निश्चल रहना है, मुझे निश्चल-अडिग रहना सिखा!

* हे गुलाबपुष्प! मुझे तेरी भाँति सुगंधित और कोमल बनना है, मुझे ऐसा बनना सिखा!

* हे सुई! तेरी तीक्ष्ण धार की भाँति मुझे अपने ज्ञान को तीक्ष्ण बनाना है कि वह सर्व पदार्थों के अंतरंग हार्द को बींधकर उनके स्वभाव का ज्ञान कर ले।

* हे पैनी छैनी ! आत्मस्वभाव और रागादि बंध भावों के एकत्व को छेदकर पृथक्-पृथक् करने के लिये मुझे तेरी भाँति ज्ञान-प्रज्ञाछैनी भगवती को प्राप्त करना है।

(१०८) संसार और मोक्ष

पर में अपनेपन की बुद्धि होना ही मिथ्यात्व और संसार है, और स्व में अपनेपन की बुद्धि होना ही सम्यक्त्व है... यही मोक्ष का मूल है।

(१०९) कोई नहीं...

मोह के बराबर कोई शत्रु नहीं है; क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है; ज्ञान के समान कोई सुख नहीं है और स्वानुभूति से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

सर्वज्ञ वीतराग स्वभाव को अचलित मन से ध्येय में रखकर स्वसन्मुख ज्ञातापन की धीरत रखना, (-मिथ्या बातों की उपेक्षा-होना) स्वसन्मुख ज्ञातापन में सावधान रहना यही सार बात है—सच्चा पुरुषार्थ है—सुखी होने का उपाय है। भूमिकानुसार बीच में आनेवाला निमित्त-व्यवहार उस काल में जाने हुए—जानने के अर्थ में प्रयोजनवान है। आस्रव करने के लिये प्रयोजनवान नहीं है।

स्वभाव के वेदन में—
परभाव के वेदन की अशक्यता

ज्ञानी-धर्मात्मा विकार का निजभावरूप से वेदन करें—यह अशक्य है। जिसप्रकार आर्य सज्जन को अभक्ष्य का भक्षण अशक्य है, जिसप्रकार ब्रह्मचारी-पुरुष को वेश्या का संग अशक्य है, जिसप्रकार सती स्त्री को परपुरुष का संग अशक्य है, उसीप्रकार भेदज्ञानी धर्मात्मा को एकत्वबुद्धि से परभाव का संग भी अशक्य है; वे तो असंग एकत्वस्वभाव की भावना में रत हैं और जगत से उदासीन हैं।

[समयसार-सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचन से]

***ज्ञानी की विचक्षणता**

आत्मा चैतन्यस्वभावी पवित्र वस्तु है, वह शरीरादि परद्रव्य से पृथक् है। पर की पृथक्ता है, विभावों की विपरीतता है, और स्वभाव का अपार सामर्थ्य है।—ऐसे आत्मा को जो जानता है, वही विचक्षण ज्ञानी है। इसके सिवा जगत की अन्य विचक्षणता आये अथवा न आये, उसकी यहाँ बात नहीं है। जगत की विचक्षणता और चतुराई कहीं आत्मा के जानने में काम नहीं आते; और जगत की बाहर की विचक्षणता न हो, उससे कहीं आत्मा को जानने का काम नहीं अटकता। जीव को अपने अस्तित्व का स्वीकार यथार्थ आना चाहिये। जो विकार में या पर में ही अपना अस्तित्व मानता है, उसकी बुद्धि विचक्षण नहीं है किन्तु स्थूल है—मिथ्या है। चैतन्य को जगत से भिन्न जाननेवाले ज्ञानी ही सूक्ष्मबुद्धिवन्त विचक्षण हैं। ज्ञानी की अपूर्व विचक्षणता को अज्ञानी पहिचान नहीं सकता।

***ज्ञानी को परभाव के वेदन की अशक्यता**

ज्ञान-दर्शन से भरपूर आनंदस्वभाव जहाँ अनुभव में आया, वहाँ परिणति विकार से पृथक् हुई; अब वह ज्ञानी विकल्प को स्वभाव में नहीं अपनाता। वह विकल्प को निजस्वभाव से विपरीत समझता है, इसलिये उस विकार का वह ज्ञानी निजभावरूप से वेदन करे—यह बात अशक्य है। जिसप्रकार आर्य सज्जन को माँस का आहार अशक्य है, उसीप्रकार स्वभाव के

लिये अभक्ष्य ऐसे जो परभाव, उनका ज्ञानी निजस्वभावरूप से वेदन करे—यह बात अशक्य है। माँस पिण्ड ऐसे इस शरीर को जो अपना मानता है, उसे परमार्थ से माँस भक्षण के समान गिना है। जिसप्रकार ब्रह्मचारी को वेश्या का संग अशक्य है, जिसप्रकार सती स्त्री को पर पुरुष का संग अशक्य है, उसीप्रकार संत-धर्मात्मा को एकत्वबुद्धि से परभावों का संग भी अशक्य है। मैं ज्ञानभाव हूँ, उस ज्ञानभाव में मुझे परभावों का कर्तृत्व या भोक्तृत्व नहीं है।

* अज्ञानी विकार का ही वेदन करता है

भगवान आत्मा तो चैतन्यस्वभाव से भरपूर सारभूत पदार्थ है, पवित्र और सुंदर है; तथा विकारी परभाव तो अशुद्ध मलिन एवं असार हैं।—ऐसा जानते हुए ज्ञानी निजस्वभाव में निरत-लीन होते हैं और विभावों से विरत होते हैं, विरमते हैं; जबकि अज्ञानी तो निजस्वभाव को भूलकर प्रकृति के स्वभाव में अर्थात् संयोग तथा रागादि परभावों में ही लीन होकर आत्मबुद्धिपूर्वक वर्तता है। इसलिये वह मिथ्यादृष्टि सदा विकार का ही वेदक है; उसे स्वभाव के आनंद का वेदन नहीं है।

रागादि भाव हैं, वे स्वभाव की—अंतर की वस्तु नहीं हैं, परंतु आगंतुक भाव हैं, वे क्षण में चले जाते हैं। उनकी जड़ें स्वभाव की गहराई तक नहीं हैं। परंतु अज्ञानी उस विकार के वेदन में एकाकार वर्तता हुआ मानों—मैं पर का वेदन करता हूँ—शरीर की वेदना का वेदन करता हूँ—ऐसा मानता है; और कदाचित् मंदराग से सहन करे, तो मैं इस शरीर की वेदना को सहन करता हूँ—ऐसा मानता है; ज्ञानी तो जानते हैं कि बाह्य संयोग मुझे स्पर्श ही नहीं करते, फिर उनका वेदन मुझे कैसा ?

* सिद्ध भगवंतों की पंक्ति में

मैं अमृत स्वाद से छलाछल भरा हुआ चैतन्य कलश हूँ;—ऐसी चैतन्यमहिमा की महत्ता के निकट ज्ञानी को जगत में अन्य किसी की महत्ता नहीं आती। जैसा सिद्ध भगवान का सम्यक्त्व, वैसा ही चौथे गुणस्थानवर्ती जीव का सम्यक्त्व, दोनों की स्वभाव की प्रतीति में कोई अंतर नहीं है। जैसा स्वभाव सिद्ध भगवान की प्रतीति में है, वैसा ही स्वभाव चौथे गुणस्थानवर्ती की प्रतीति में है, उसमें रंचमात्र अंतर नहीं है। अहा, साधक निजस्वभाव की प्रतीति के बल से सिद्धभगवंतों की पंक्ति में बैठा है, प्रतीति में पूर्ण चैतन्यस्वभाव की स्थापना करके वह सिद्धपद को साध रहा है।

*** ज्ञानी चैतन्य-महल में निवास करते हैं**

भाई, इन बाहर के बंगलों से तो तुझे बाहर निकलना पड़ेगा; तू अंतर के चैतन्य महल में प्रवेश कर... वह तेरा अविनाशी विश्रामस्थल है। चैतन्यरस से भरपूर आत्मा ही धर्मी का निवास स्थान है, उसके स्वाद का अनुभव ही धर्मी आहार है। आचार्यदेव कहते हैं कि—हे निपुण पुरुषों! ज्ञान में विकार का वेदन नहीं है, ऐसा निर्णय करके तुम अज्ञानता को छोड़ो, विकार के वेदन को छोड़ो और शुद्धज्ञान के वेदन में उपयोग को लगाओ, यही चारों अनुयोगों का तात्पर्य है। ज्ञानी चैतन्य महल में प्रविष्ट होकर निजानन्द का वेदन करते हैं; अज्ञानी चैतन्यस्वरूप निजगृह को भूलकर बाहर परभावों में भटकता है और दु:ख का वेदन करता है।

*** शुद्धात्मभावरूप भावश्रुत**

शास्त्र ज्ञानस्वभाव में एकता करने को तथा राग में एकता छोड़ने को कहते हैं; भावश्रुत द्वारा शुद्धचैतन्य का वेदन करना चाहिये और विकार का वेदन छोड़ना चाहिये;—ऐसा दर्शानेवाले द्रव्यश्रुत ही सच्चे द्रव्यश्रुत हैं। कोई जीव ऐसे द्रव्यश्रुत को तो पढ़े, 'शास्त्र ऐसा करने को कहते हैं'—ऐसा तो जाने, परंतु स्वयं भावश्रुतज्ञानरूप परिणमित होकर शुद्धात्मा का संचेतन न करे, अनुभव न करे तो शुद्धात्मज्ञान के अभाव से वह अज्ञानी ही है और अज्ञान से वह विकार का कर्ता-भोक्ता ही है। ज्ञानी को शुद्धात्मज्ञानरूप भावश्रुत प्रगट हुआ है और इसलिये उसे समस्त कर्मफल के प्रति अत्यंत विरक्तभाव वर्तता है, इसलिये वह कर्मफल का अभोक्ता ही है। भावश्रुतज्ञान में ऐसी योग्यता नहीं है कि विकार का वेदन करे। जिसप्रकार विकारभाव में ऐसी योग्यता नहीं है कि वह मोक्ष का कारण हो, उसीप्रकार ज्ञानी के भावश्रुत में ऐसी योग्यता नहीं है कि वह विकार का वेदन करे।

*** मोक्ष का साधक भावश्रुत**

शुद्धात्मज्ञान को यहाँ भावश्रुत कहा, उसमें मोक्षमार्ग समा जाता है; सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यग्चारित्र—यह तीनों शुद्धात्मा के अनुभवरूप भावश्रुत में आ जाते हैं।—ऐसा भावश्रुत, वह मोक्ष का साधक है। ऐसा भावश्रुत, वह शुद्धात्मा के आश्रित है; जितना स्वाश्रयभाव है, उतना ही मोक्ष का कारण है; किंचित् भी पराश्रयभाव, वह मोक्ष का कारण नहीं है।

*** सम्यग्दर्शन में ज्ञानी का उपकार**

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की जिसकी योग्यता है, उसे साक्षात् ज्ञानी का आत्मा तथा

उनकी वाणी निमित्त है। सम्यग्दर्शन तो स्वयं भावश्रुतरूप से परिणमित होकर शुद्धात्मा का अनुभव करे तब होता है, परंतु उसमें निमित्त की भी यह विशेषता है कि निमित्तरूप से भी भावश्रुतरूप परिणमित आत्मा की ही देशना होती है। इसप्रकार ज्ञानी के भावश्रुत की पहिचान, वह भावश्रुत का कारण है। ऐसे भावश्रुत से रहित तो सब कुछ भाररूप है।

*** शांति का वेदन कब ?**

ज्ञान के वेदन में ही शांति है; दुनियाँ की आकुलता के विकल्प कम हों और राग की किंचित् मंदता हो, वहाँ उस मंदराग के वेदन में (साता वेदन में) एकाकार होकर अज्ञानी उसे शांति का वेदन मानता है, परंतु वह कहीं शांति नहीं है, वह तो राग का ही वेदन है। राग स्वयं आकुलतारूप-अशांत है, तो उसके वेदन में शांति कैसी ? राग से पृथक् होकर ज्ञान के वेदन में आये, तभी शांति का वेदन होता है। जिसे राग से भिन्नता का भान भी नहीं है, उसे शांति का वेदन कैसा ? भेदज्ञान करके राग से भिन्न ज्ञान में उपयोग को लगाये, तभी स्वभाव की अतीन्द्रिय अपूर्व शांति का वेदन होगा।

सीधा मार्ग

श्री जिनभगवंतों द्वारा कथित 'रत्नत्रयमार्ग' सर्वोत्तम है। अनादि के जन्म-जरा-मरण के चक्ररूप भयानक संसाररूपी रोग मिटाने की यह अचूक औषधि है, और मोक्षरूप परिपूर्ण स्वस्थता (स्व-आत्मा में स्थिरतारूप स्वास्थ्य) देनेवाला है। यह रत्नत्रय परमपवित्र है, कल्याणकारी है, तीर्थरूप है, मंगलरूप है और मोक्ष का सीधा मार्ग है।

भेदज्ञान द्वारा उपशम की प्राप्ति

मोहवश उपयोग को परद्रव्य में ही भटका-भटकाकर राग-द्वेष से सदैव व्याकुल वर्तता जीव संसार में एक क्षण भी शांतभाव का आस्वादन नहीं करता। यदि भेदज्ञान करके पर से भिन्न स्वद्रव्य को देखे तो राग-द्वेष से छूटकर उसका ज्ञान परम उपशम को प्राप्त हो और चैतन्य के किसी अचिंत्य शांतभाव का वेदन हो। ऐसे उपशम की प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए आचार्य भगवंत कहते हैं कि भाई, तू तो ज्ञान है... तेरे ज्ञान सूर्य में से तो ज्ञातृत्व की किरणें छूटती हैं; ज्ञान सूर्य में से कहीं राग-द्वेष की किरणें नहीं फूटतीं। और परद्रव्य भी कहीं तेरे ज्ञान में राग-द्वेष नहीं कराता। तू अपने ज्ञान को ज्ञानरूप ही रख और राग-द्वेष न होने दे तो जगत में किसी की शक्ति नहीं है कि तुझे राग-द्वेष कराये। स्वाधीन ज्ञान को जगत की कोई वस्तु ललचा नहीं सकती या डिगा नहीं सकती। राग-द्वेष करना, वह ज्ञान का कार्य नहीं है; ज्ञान का कार्य तो उपशांत भावरूप रहना है। इसप्रकार भिन्न ज्ञान के अनुभव से ज्ञानी को वीतरागभावरूप उपशम की प्राप्ति होती है। वाह! देखो... इस पोन्नूर-हिल के ऊपर से कुन्दकुन्दाचार्यदेव का दिया हुआ वीतरागी सन्देश!

[कार्तिक कृष्णा ४ : समयसार-सर्व विशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से]

इस जगत में ऐसी वस्तु स्थिति प्रसिद्ध है कि जीव के गुण-पर्यायें जीव में और अजीव के गुण-पर्यायें अजीव में; किसी द्रव्य के गुण-पर्याय को अन्य द्रव्य किंचित् भी उत्पन्न नहीं कर सकता है। इसप्रकार किसी द्रव्य को अन्य द्रव्य के साथ किंचित् भी संबंध नहीं है।

अब, यह ज्ञानस्वरूप आत्मा है, वह ज्ञान पर्याय द्वारा पर का भी ज्ञाता है; परंतु उससे कहीं परद्रव्य उसे राग या द्वेष उत्पन्न नहीं करता। जगत में अचेतन पुद्गल विविध वचनोंरूप से परिणमित हों, वहाँ वे वचन कहीं जीव के उपयोग को बलात् अपनी ओर नहीं खींचते; जीव ही स्वरूप में से डिगकर ज्ञान के साथ राग-द्वेष करता है; और इस जीव ने ऐसे वचनों से मेरी निन्दा की अथवा इस जीव ने ऐसे वचनों से मेरी स्तुति की, ऐसी मिथ्याबुद्धि द्वारा अज्ञानी राग-द्वेषरूप परिणमित होता है। अरे भाई, अपने उपयोग को तू उपशमभाव में रख, और राग-द्वेष में न लगा, तो कहीं वे शब्द तुझसे नहीं कहते कि तू हमारी और देख... और तू हमारे ऊपर राग-द्वेष कर।

और तू दूसरों के प्रति राग-द्वेष करता है कि इसने मेरी स्तुति की या निन्दा की; परंतु सामनेवाला जीव कहीं उस स्तुति या निन्दा के शब्दों का कर्ता नहीं है। उस जीव ने तो अपने में राग-द्वेष किये, परंतु शब्दों में या तुझमें उसने कुछ किया नहीं है। निन्दा-प्रशंसा के भाव करनेवाला वह जीव कहीं तेरे आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो गया है कि तुझे वह राग-द्वेष कराये।

जगत में जो पुद्गल निन्दा या स्तुति के शब्दोंरूप परिणमित हुए, उन्हें तो कोई खबर नहीं है कि हम इस जीव की स्तुति या निन्दा करें। वह तो बेचारे स्वयं जड़भावरूप से अपनी पर्याय में परिणमित हो रहे हैं; वे शब्द कहीं तेरे आत्मा में प्रविष्ट नहीं होते तो उन शब्दों ने तुझमें क्या किया ? किसलिये तू किसके प्रति राग-द्वेष करता है ? भाई, तू तो ज्ञाता है... परद्रव्य को जानने का तेरा स्वभाव है, परंतु उसमें राग-द्वेष करके रुकने का तेरा स्वभाव नहीं है।

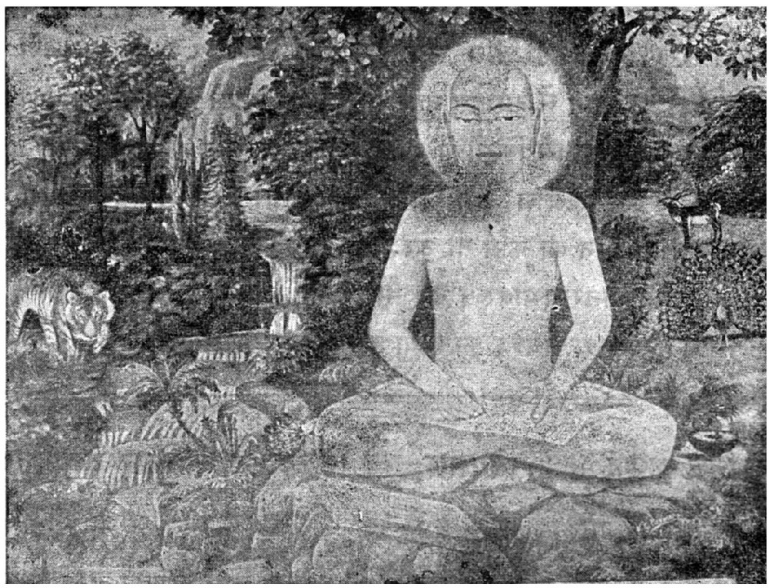

भगवान श्री कुन्दकुन्द वन में ताड़पत्र पर शास्त्र रचना करते हुए

तू चैतन्यसूर्य है, तेरे चैतन्यसूर्य में से ज्ञातृत्व की किरणें फूटती हैं, परंतु चैतन्यसूर्य में से कहीं राग-द्वेष की किरणें नहीं फूटतीं।

अरे जीव! जगत में एक भी पदार्थ ऐसा नहीं है कि जो तुझे राग-द्वेष कराये। कड़वे विष जैसे शब्द आयें या घोर निन्दा के शब्द आयें, परंतु वह तो अचेतन पुद्गल का परिणमन है; वे तेरे पास तो ज्ञेयरूप से ही आये हैं और वे भी कहीं बलात् तेरे उपयोग को अपनी ओर नहीं

श्री कुन्दकुन्दाचार्य
के
पावन तीर्थधाम
की
यात्रा करके
नीचे
आते हुए
श्री कानजीस्वामी
एवं
यात्रीगण

पोन्नूर का
विशाल
अति प्राचीन
जिनमंदिर
जहाँ
श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव
दर्शन
करने
पधारते थे

खींचते। इसीप्रकार प्रशंसा के या अभिनंदन के शब्द आयें तो वह भी अचेतन परमाणु का परिणमन हैं, वे शब्द कहीं तुझे राग करने को नहीं कहते। तेरे अस्तित्व में शब्दों का प्रवेश ही नहीं हैं; तो फिर वे तुझे क्या करेंगे ?

अहा, जगत से भिन्न ज्ञानतत्त्व है, उसे जगत का कोई पदार्थ राग-द्वेष नहीं कराता और जीव का ज्ञान भी कहीं परद्रव्य में नहीं जाता। ऐसी भिन्नता जाने, वहाँ उपशमभाव हुए बिना नहीं रहता। मैं अपने ज्ञान को ज्ञानरूप ही रखूँ और राग-द्वेषरूप न होने दूँ तो जगत में कोई शक्ति ऐसी नहीं है कि ज्ञान को राग-द्वेष कराये। जगत का कोई अनुकूल विषय ज्ञान को ललचा नहीं सकता या कोई प्रतिकूल विषय उसे डिगा नहीं सकता। स्वाधीन ज्ञान वीतरागी उपशमप रहनेवाला है, राग-द्वेष करनेवाला नहीं है।

लोग शब्द को 'बाण' कहते हैं; शब्दबाण से हृदय बिंध जाता है, ऐसा कहते हैं; परंतु भाई ! तेरा ज्ञान ऐसा अभेद है कि जड़ शब्दबाण उसमें प्रवेश ही नहीं कर सकते। क्या जड़ शब्द आत्मा में आते हैं ? क्या आत्मा का ज्ञान जड़ शब्दों में जाता है ? नहीं; दोनों की अत्यंत भिन्नता ही है। तो फिर ज्ञानसूर्य की किरणों में शब्द ज्ञात हों, उससे ज्ञान में क्या मलिनता आ गई ? ज्ञानी तो जानता है कि परज्ञेयों से मेरा ज्ञान भिन्न ही परिणमित होता है; परज्ञेय मेरे ज्ञान में राग-द्वेष उत्पन्न नहीं करते, अथवा मेरा ज्ञान ज्ञानपने को छोड़कर पर में राग-द्वेष नहीं करता। ऐसे ज्ञान में राग-द्वेष का अभाव है। इसप्रकार भेदज्ञान की भावना द्वारा ज्ञानी को उपशांतभाव होता है।

ज्ञान का कार्य तो ज्ञाता रहकर उपशमभाव रूप अर्थात् वीतरागभावरूप रहना है; राग-द्वेष करना, वह कहीं ज्ञान का कार्य नहीं है। अरे, तू अपने ज्ञान को न पहिचाने और परद्रव्य को इष्ट-अनिष्ट मानकर उस ओर उपयोग को भटकाता हुआ राग-द्वेष करे, यह तो मेरी मूढ़ता है। आचार्यदेव करुणापूर्वक कहते हैं कि अरे, वस्तुस्वरूप की ऐसी भिन्नता होने पेर भी मूढ़ बुद्धि जीव उपशमभाव को क्यों प्राप्त नहीं होते ? और परद्रव्य को इष्ट-अनिष्ट मनकर राग-द्वेष क्यों करते हैं ? भाई, परपदार्थ निकट हों या दूर हों, तेरे ज्ञान को वे कुछ नहीं करते; फिर तुझे यह क्या हुआ ?—भिन्नता को क्यों भूल गया ? भिन्नता को भूलकर तू राग-द्वेष क्यों करता है ? ज्ञान को पृथक् का पृथक् रखकर ज्ञातारूप से ही रह। उसी में तुझे उपशांतभाव का आस्वादन होगा।

निन्दा-प्रशंसा के शब्दों की भाँति सुंदररूप या कुरूप, वह कहीं जीव के ज्ञान को अपनी ओर नहीं खींचता कि तू मेरी ओर देख... और वह कहीं जीव को राग-द्वेष नहीं कराता।

सुंदर अप्सरा या देव समान रूप, वह कहीं जीव से नहीं कहता कि तू मेरी ओर देखकर राग कर। वह रूप तो अचेतन का परिणमन है, उसमें कहीं यह अच्छा और यह बुरा—ऐसे दो भेद नहीं हैं, वे तो ज्ञान के ज्ञेय ही हैं। उसीप्रकार दुर्गंध से भरा हुआ अत्यंत कुरूप शरीर हो, वह कहीं जीव को द्वेष नहीं कराता। अरे, उनसे तो तेरी अत्यंत भिन्नता है। ऐसी भिन्नता को जाने तो एकत्वबुद्धि से राग-द्वेष का तो अभाव ही हो जाये। ज्ञान पर में नहीं जाता, और परवस्तु ज्ञान में नहीं आती; फिर परवस्तु निकट हो या दूर हो, उससे क्या ? वह कहाँ राग-द्वेष कराती है ? और ज्ञान का भी स्वभाव कहाँ राग-द्वेष करने का है ? इसलिये भेदज्ञान के बल से वीतरागता का होना ही रहा।

शब्द और रूप की भाँति गंध, रस-स्पर्शादि में भी समझ लेना। वे कोई पदार्थ तेरे उपयोग को अपनी ओर नहीं खींचते, वे कहीं कर्ता होकर तुझे राग-द्वेष नहीं कराते। तेरे ज्ञान में भी उन्हें अच्छा-बुरा मानकर राग-द्वेष करने का स्वभाव नहीं है। ऐसे स्वभाव में (ज्ञान के या ज्ञेय के स्वभाव में) कहीं राग-द्वेष नहीं है; तथापि अज्ञानी को जो राग-द्वेष होते हैं, वे उसके अज्ञान से ही होते हैं। यहाँ मिथ्यात्वसहित राग-द्वेष की ही गिनती है। मिथ्यात्व दूर होने के पश्चात् जो अल्प राग-द्वेष हैं, वह तो ज्ञान से पृथक्‌रूप ही हैं; ज्ञानी उन्हें ज्ञान के साथ एकमेक नहीं जानते, ज्ञान से पृथक् ही जानते हैं, इसलिये उनका ज्ञान दोषित नहीं है, उनका ज्ञान तो शुद्ध ज्ञानरूप ही वर्तता है।—इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा उन्हें वीतरागभावरूप उपशम की प्राप्ति होती है।

वाह! देखो, इस पोन्नूर तीर्थ पर कुन्दकुन्दाचार्यदेव का दिया हुआ वीतरागी संदेश! वीतरागता में झूलते-झूलते संतों ने अलौकिक काम किया है! और उन संतों की वीतरागी वाणी आत्मा में झेलकर ज्ञानियों ने उपशमरस का पान किया है।

[—इस लेख का शेष भाग अगले अंक में]

जिसे आत्मा का महात्म्य आये, वह महात्मा होता है

[चर्चा पर से]

एक दिन रात्रि चर्चा में गुरुदेव ने मंथनपूर्वक कहा कि—आत्मा के ज्ञानस्वभाव का महात्म्य अद्‌भुत अपार है। जिसे आत्मा का महात्म्य आये, वह महात्मा होता है। बाह्य अनुकूलता में मोहित हो जाये अथवा प्रतिकूलता में आकुलित हो जाये, उसे संयोग का महात्म्य है; परंतु संयोग से निरपेक्ष ऐसे स्वभाव का महात्म्य नहीं है। जिसे चिदानंद स्वभाव का महात्म्य है, उसका ज्ञान संयोग की अनुकूलता या प्रतिकूलता में नहीं घिरता, क्योंकि संयोग की महिमा ही नहीं है—फिर वह अनुकूल हो या प्रतिकूल हो।

❀ अंतर की वस्तु का महात्म्य भासित हो तो अंतरोन्मुखता हो।

❀ बाह्य वस्तुओं का महात्म्य दूर हो तो बहिर्मुखता दूर हो।

❀ जिस ओर की महिमा आये, उस ओर ज्ञान ढले बिना नहीं रहता।

निजस्वभाव में कितना अचिंत्य सामर्थ्य है, उसे यदि वास्तव में जाने तो उसकी इतनी अचिंत्य महिमा आये कि ज्ञान का उपयोग उसी ओर ढल जाये। जब तक ज्ञान उस ओर न ढले—उसमें तन्मय न हो, तब तक उसकी सच्ची महिमा नहीं जानी है... महात्म्य नहीं आया है, ऐसा समझना। ज्ञान में किसकी महिमा है, उसका यह माप है। ज्ञान को जिसकी महिमा भासित होगी, उसी ओर वह ढलेगा और उसमें तन्मय होगा। जिसे आत्मा की महिमा भासित हो, वह आत्मा की ओर ढलता है और महात्मा होता है।

जो अंतरात्मा हुए, वे महात्मा हैं, उन महात्मा को मेरा नमस्कार है।

विशुद्ध ज्ञान में विकार का अकर्तृत्व

भाई, तू ज्ञानस्वभाव को एकबार दृष्टि में तो ले! ज्ञानस्वभाव में दृष्टि करते ही विकार की रुचि छूट जायेगी। विकार का अकर्तृत्व होकर तेरे पुरुषार्थ की गति ज्ञायकभाव की ओर ढलेगी—इसमें सम्यग्दर्शन है, इसमें सम्यग्ज्ञान है और इसी में आनंद का अनुभव है... ज्ञायक के ओर की परिणति में मोक्षमार्ग का समावेश हो जाता है।

[समयसार-सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के प्रवचनों से]

✻ भगवान आत्मा अपने ज्ञायकस्वभाव द्वारा पर का अकर्ता ही है। जो जीव ज्ञायकस्वभाव में सावधान हुआ, उसकी परिणति अंतरोन्मुख हुई; उस परिणति में विकार का भी अकर्तापना हुआ।

✻ यह प्रभु आत्मा, जगत के अनंत पदार्थों से पृथक् है, स्वयं आनंदरस के स्वाद से भरपूर है। वह जब अपने ज्ञायकस्वभाव को भूलकर पर की कर्तृत्वबुद्धि करता है, तब दुःख का अनुभव करता है। भाई, जगत के अनंत-पदार्थ सब अपने-अपने कार्यरूप परिणमित हो ही रहे हैं, क्या वे परिणमन से रहित हैं, जो तू उनके कार्य करेगा? वे तो अपना कार्य कर ही रहे हैं, फिर उसमें तूने क्या किया? तू अपने ज्ञानरूप परिणमन कर, वह तेरा कार्य है। तेरे ज्ञान में पर का कर्तृत्व नहीं है।

✻ तू ज्ञानस्वभाव को एकबार दृष्टि में तो ले! ज्ञानस्वभाव में दृष्टि करते ही विकार की रुचि छूट जायेगी... विकार का अकर्तृत्व होकर तेरे पुरुषार्थ की गति ज्ञायक की ओर ढलेगी।—इसमें सम्यग्दर्शन है, इसमें सम्यग्ज्ञान है, और इसी में आनंद का अनुभव है। ज्ञायक के ओर की परिणति में मोक्षमार्ग का समावेश हो जाता है।

✻ ज्ञानी अपने ज्ञानादि निर्मलभावों को तो स्वज्ञेयरूप से तन्मय होकर जानता है, और ज्ञान से भिन्न ऐसे परभावों को तथा परद्रव्यों को परज्ञेयरूप से उनमें तन्मय हुए बिना जानता है। ऐसी भेदज्ञान परिणति में कर्म का अकर्तापना ही है। उस ज्ञान में कर्म बंधन नहीं होता।

✻ जगत में कोई पदार्थ परिणमन रहित नहीं होता। परिणमनरूप निजकार्य में प्रत्येक पदार्थ तन्मयरूप से वर्त रहा है। जीव के परिणाम में तन्मयरूप से जीव वर्तता है और अजीव के

परिणाम में अजीव तन्मयरूप से वर्तता है। कोई पदार्थ दूसरे के परिणाम के साथ कभी तन्मय नहीं होता—अलग ही रहता है। अपने ज्ञान परिणाम में ही मैं तन्मयरूप से उत्पन्न होता हूँ—ऐसा निर्णय करता हुआ ज्ञानी, पर का अकर्ता ही रहता है। इसका नाम मोक्ष का पुरुषार्थ है।

* भाई, पहले तू एक बात का निर्णय कर कि मेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी है। अब ज्ञानस्वभाव परिणमित होकर ज्ञानभावरूप से उत्पन्न होगा या अजीवरूप से? ज्ञानस्वभाव कभी अजीवरूप से उत्पन्न नहीं होता अर्थात् ज्ञान का कार्य अजीव नहीं होता; ज्ञान का कार्य ज्ञानमय ही होता है—इसप्रकार ज्ञानभाव में ज्ञान का ही कर्तृत्व है, उसमें अन्य का अकर्तृत्व ही है। ऐसा ज्ञानभावरूप से ही परिणमित ज्ञान, बंध का कारण नहीं है, वह ज्ञान अबंध है तथा वह 'सर्व विशुद्ध' है। ऐसा 'सर्वविशुद्धज्ञान' अपने निर्मल परिणाम का ही कर्ता है, वह किसी पदार्थ को बदलने नहीं जाता। ज्ञान में सर्व को जानने की शक्ति है, परंतु किसी को आगे-पीछे करने की शक्ति नहीं है। ज्ञान के ऐसे स्वभाव का निर्णय, वह वीतरागभाव का कारण है।

* भाई, तुझे अपने ज्ञान का विश्वास भी न आये तो तू अंतर्मुख कब होगा? ज्ञान से जो पर का काम कराना चाहे या ज्ञान से विकार कराना चाहे, वह जीव पर से और विकार से भिन्न ज्ञानस्वभावरूप कब परिणमित होगा? और उसे वीतरागता कब होगी? ज्ञान की जिसे प्रतीति नहीं है—अनुभव नहीं है, उसे वीतरागभावरूप धर्म का अंश भी नहीं होता। ज्ञान का ज्ञानरूप (राग से भिन्न) परिणमन होना वह धर्म है।

* धर्म कहो या ज्ञानचेतना कहो; आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान अंतर्मुख होकर ज्ञानरूप ही परिणमित हो और राग-द्वेष या हर्ष-शोकरूप परिणमित न हो—वह ज्ञानचेतना है; उसमें ज्ञान का ही कर्तृत्व है और वीतरागी आनंद का भोक्तृत्व है।—ऐसा शुद्धज्ञान, वह मोक्ष का कारण है।

* आत्मा में जहाँ शुद्ध ज्ञानपरिणमन हुआ, वहाँ उसके परिणमन में विकार के साथ अकार्य-कारणपना हुआ; इसलिये शुद्धज्ञानपर्याय को विकार का कार्यपना भी नहीं है और विकार का कारणपना भी नहीं है। ज्ञान कारण होकर विकार का कार्य करे—ऐसा नहीं है, तथा विकार को कारण बनाकर ज्ञान उसका कार्य हो—ऐसा भी नहीं है। इसप्रकार ज्ञानभाव को विकार से अत्यंत भिन्नता है। ज्ञान में विकार का कर्तृत्व किंचित्मात्र भासित नहीं होता। अहा, ऐसा भेदज्ञान, वह जैनदर्शन का मूल है। एकबार ऐसा भेदज्ञान करे तो विकार से पृथक् होकर

ज्ञान अपने निजानंद का संवेदन करता-करता मोक्षदशा को प्राप्त करता है।

* चेतना परिणति तीन प्रकार की है—एक ज्ञानचेतना, दूसरी कर्मचेतना और तीसरी कर्मफलचेतना। व्यवहार के विकल्पों में वर्तती चेतना भी कर्मचेतना है और कर्मचेतना, वह बंध का कारण है। ज्ञान अंतर्मुख होकर स्वयं अपने स्वभाव का संचेतन—अनुभव करता है।—ऐसी ज्ञानचेतना है। ऐसी ज्ञानचेतना का एक कण जागृत हुआ, वह केवलज्ञान प्राप्त कराता है।

* ज्ञानी के कर्ताकर्मपने का अपने ज्ञान में ही समावेश होता है, उसमें दूसरे की अपेक्षा नहीं है। ज्ञानी को जिसप्रकार अपने कर्ताकर्म में पर की अपेक्षा नहीं है, उसीप्रकार विकार की भी अपेक्षा नहीं है। अज्ञानी विकार के कर्ताकर्म में अटका है, वह ज्ञान का सच्चा कार्य नहीं है। भाई, तेरे ज्ञान का कर्तृत्व ऐसा नहीं है कि वह किसी अन्य का कार्य करने की अपेक्षा रखे। ज्ञान का कर्तृत्व ऐसा निरपेक्ष है कि उसका अपने में ही समावेश होता है; उसीप्रकार भोक्तापने का समावेश भी अपने में ही होता है। अहा, ऐसा निरपेक्ष स्वतत्त्व लक्ष में ले तो कितनी स्वाधीनता! कितनी निराकुलता! कितनी शांति! और कितनी वीतरागता!! निरपेक्ष स्वतत्त्व को जीव ने कभी लक्ष में नहीं लिया है और बाहर की ही अपेक्षा रखकर पराश्रय में भटक रहा है। एक बार निरपेक्ष स्वतत्त्व को लक्ष में ले तो अपूर्व श्रद्धा-ज्ञान-आनंद प्रगट हो।

* जगत के पदार्थ अपने-अपने कर्ता हैं; पर की अवस्था का कर्ता पर और अपनी अवस्था का कर्ता मैं। पर की अवस्था मेरा कार्य नहीं है और मेरी अवस्था पर का कार्य नहीं है; पर के साथ मुझे कर्ता-कर्मपने का संबंध किंचित् नहीं है, मैं तो ज्ञान हूँ और ज्ञान ही मेरा कार्य है। ऐसे निर्णय में स्वसन्मुख परिणति हो, उसका नाम धर्म है। उस स्वसन्मुख परिणति में अनंत गुणों के निर्मल कार्य होते हैं, उन्हीं का धर्म कहा है।

* अहा, सत् तत्त्व के निर्णय में कितनी शक्ति है—उसकी सामान्य लोगों को खबर नहीं है। एक सत् तत्त्व के निर्णय में नवों तत्त्वों का निर्णय समाया हुआ है; अरिहंतों और सिद्धों के स्वरूप का निर्णय भी स्वतत्त्व के निर्णय में समा जाता है। स्वतत्त्व को अर्थात् ज्ञायकतत्त्व को भूलकर एक भी तत्त्व का निर्णय नहीं हो सकता।

* जो परिणति स्वतत्त्व का निर्णय करके अंतरोन्मुख हुई, उस परिणति में अपने आनंदादि का वेदन है, परंतु विकार का वेदन उस परिणति में नहीं है। जहाँ विकार के भी वेदन

का कर्तृत्व नहीं है, वहाँ पर का कर्तृत्व तो कहाँ रहा ? शुद्ध-उपादान अपने शुद्ध कार्य को ही करता है। अहा ! निजरस से शुद्ध परिणमित ज्ञान, रागादि का अकर्ता है और कर्मबंध का भी निमित्तकर्ता वह नहीं है। ऐसा विशुद्धज्ञान मोक्ष को साधता है।

* चैतन्य में से चैतन्य ही स्फुरित होता है; चैतन्य में से विकार स्फुरित नहीं होता। जिसप्रकार सूर्य में से प्रकाश ही निकलता है; सूर्य में से अंधकार नहीं निकलता, उसीप्रकार चैतन्य सूर्य में से ज्ञानप्रकाश ही निकलता है, चैतन्य सूर्य में से विकाररूप अंधकार नहीं निकलता। परंतु ऐसे चैतन्य का स्फुरण कब होता है ? कि जब अंतर में डुबकी लगाकर चैतन्यस्वभावी आत्मा का निर्णय करे, तब उसमें से चैतन्य किरण प्रस्फुटित होती है और उस चैतन्य किरण में (सम्यक्श्रुत में) समस्त तत्त्व का निर्णय करने की शक्ति है; समस्त आगमों का रहस्य उस ज्ञान में आ जाता है।

* एक ओर अनंत गुण से परिपूर्ण ज्ञानस्वभाव है; उसकी तो अचिंत्य महत्ता भासित नहीं होती और कुछ शुभ विकल्प करे, कषाय की कुछ मंदता करे, तो 'ओहो, बहुत कर लिया !'—ऐसी महत्ता भासित होने लगती है; उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि अरे मूढ़ ! ऐसा अज्ञान तू कहाँ से लाया ? चैतन्य की महत्ता के बदले विकार की महत्ता तुझे कहाँ से भासित हुई ? संतों ने तो शास्त्रों में ज्ञान की महिमा भरी है, वह तुझे क्यों दिखायी नहीं देती ? और विकार के कर्तृत्व में क्यों रुका है ? वह कर्तृत्वबुद्धि छोड़ और ज्ञानमहिमा में उपयोग को लगा।

* सिद्धांत तो संतों के अनुभव का संकेत है। पूरा अनुभव वाणी में कैसे आ सकता है ? सिद्धांत में तो मात्र उसका दिशा सूचन आया है; संतों ने सिद्धांत में अनुभव का संकेत भरा है—कहीं अनुभवगम्य वस्तु वाणीगम्य नहीं हो सकती।

* ज्ञान आत्मा का निज लक्षण है; उस ज्ञान लक्षण में विकार का कर्तृत्व या भोक्तृत्व नहीं है, तथा उस ज्ञानलक्षण में जगत की कोई वस्तु अनुकूल या प्रतिकूल नहीं है। ज्ञानलक्षण स्वयं आनंदसहित है, उसमें आनंद का ही उपभोग है।

* ज्ञान को जिसप्रकार जगत की प्रतिकूलता का भय नहीं है, उसीप्रकार जगत की अनुकूलता की प्रीति भी नहीं है। जगत के पदार्थों के साथ जहाँ कर्ता या भोक्तापने का अभाव है, वहाँ उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानना कहाँ रहा ? और जहाँ इष्ट-अनिष्टपना नहीं है, वहाँ राग-द्वेष भी कहाँ रहे ? इसलिये ज्ञानी को ज्ञान में से राग-द्वेष का कर्तृत्व भी निकल गया है।

* केवल-किरणों से शोभायमान इस भगवान चैतन्य सूर्य को प्रतीति में लेना वह अपूर्व उद्यम है... संपूर्ण परिणति कुलाँट खाकर अंतरोन्मुख होती है। सातवें नरक से लेकर नववें ग्रैवेयक तक परिभ्रमण करने पर भी चैतन्य की प्रभुता लेशमात्र खंडित नहीं हुई है; उसे प्रतीति में लेने से परिभ्रमण मिटता है।

जो जो देख्यो वीतराग ने सो सो होसी वीरा रे।
विन देख्यो होसी नहीं क्यों ही, काहे होत अधीरा रे॥१॥

समयो एक बढै नहिं घटसी, जो सुख दुख की पीरा रे।
तूं क्यों सोच करै मन कूडो, होय वज्र ज्यों हीरा रे॥२॥

लगै न तीर कमान बान कहूँ, मार सकै नहिं मीरा रे।
तूं सम्हारि पौरुष-बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे॥३॥

निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभु को, टारै भव की भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारे भव नीरा रे॥४॥

परमात्मप्रकाश

यह 'परमात्मप्रकाश' जैन समाज में सर्वप्रिय सुगम अध्यात्म ग्रंथ है। श्री योगीन्दुदेव ने लगभग विक्रम संवत ७०० में इसकी रचना की है। कुन्दकुन्दस्वामी के मोक्ष प्राभृत का और पूज्यपादस्वामी के समाधिशतक का इन ग्रंथकार पर प्रभाव है। श्री ब्रह्मदेवजी ने लगभग १३वीं सदी में इसकी टीका की रचना की है; इसके उपरांत द्रव्य संग्रह की टीका भी उन्होंने रची है। हिन्दी अनुवाद करीब २०० वर्ष पूर्व पंडित दौलतरामजी ने किया है। इस परमात्मप्रकाश में तीन अधिकार हैं। प्रथम अधिकार में (१२३ दोहों द्वारा) विविध प्रकार से परमात्मा, अंतरात्मा और बहिरात्मा का स्वरूप बतलाया है, द्वितीय अधिकार में (११४ दोहों द्वारा) मोक्ष का अैर मोक्षमार्ग का स्वरूप बतलाया है, तत्पश्चात् चूलिका (१०७ दोहों की) द्वारा परम समाधि का अथवा अभेद रत्नत्रय का कथन किया है। इस शास्त्र पर पूज्य कानजीस्वामी ने आज से १७ वर्ष पहले प्रवचन किये थे, जिनमें से कुछ भाग उन दिनों 'आत्मधर्म' में प्रकाशित हुआ था। इस कार्तिक कृष्णा ९, (वीर सं० २४९१) से पुनः 'परमात्मप्रकाश' पर प्रवचन आरम्भ हुए हैं। उनमें से प्रथम प्रवचन का नमूना यहाँ दिया जा रहा है।

शरीर में विद्यमान आत्मा स्वयं परमात्मस्वरूप है; उसमें परमात्मा होने की शक्ति है। उस परमात्म शक्ति का प्रकाश कैसे हो अर्थात् परमात्मपना कैसे प्रगट हो—वह बात इस शास्त्र में बतलायी है; इसलिये इसका नाम परमात्मप्रकाश है। केवलज्ञान-केवलदर्शन-अनंत सुख और अनंत वीर्य—ऐसे स्वभाव चतुष्टय प्रगट हों, वह परमात्मदशा है और अंतरात्मपना उसका उपाय है। अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूप को ध्याने से आत्मा स्वयं परमात्मा होता है। आत्मा में शक्तिरूप से अनंत चतुष्टय सदा विद्यमान है; उसे प्रतीति में लेकर स्वानुभवपूर्वक बारम्बार उसका मंथन करने से आत्मा स्वयं ही परमात्मस्वरूप से प्रकाशित होकर केवलज्ञान से जगमगा उठता है।

मंगलाचरण में टीकाकार कहते हैं कि—

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः॥

जो मात्र ज्ञान-आनंद स्वरूप हैं, जिन हैं, परमात्मा हैं—ऐसे श्री सिद्ध भगवान को परमात्मप्रकाश की प्राप्ति के हेतु नमस्कार हो। सिद्ध भगवंत परम आत्मस्वरूप के प्रकाशक हैं अर्थात् आत्मा का शुद्धस्वरूप कैसा है, उसे वे प्रसिद्ध करते हैं, सिद्ध भगवंतों को जानने से आत्मा का शुद्धस्वरूप लक्ष में आता है।

सिद्ध भगवंत किसप्रकार सिद्ध हुए?—तो कहते हैं कि परमात्मस्वरूप का ध्यान करके; ऐसे सिद्ध भगवंतों को मंगलाचरण में नमस्कार करते हैं:—

जे जाया झाणग्गिए कम्मकलंक डहेवि।
णिच्चणिरंजण णाणमय ते परमप्प णलेवि॥१॥

ध्यानरूपी अग्नि द्वारा कर्मकलंक को जलाकर जो नित्य निरंजन ज्ञानमय हुए—ऐसे परमात्मा को नमस्कार किया है। आत्मा सदा परमात्मस्वभाव से परिपूर्ण है, उसका ध्यान ही परमात्मा होने का उपाय है। सम्यग्दर्शन भी उसके ध्यान से ही प्रगट होता है।

अहा, जिस परमात्मस्वरूप की बात कहने-सुनने से भी शांति होती है, वह स्वरूप यदि प्रगट हो तो फिर कहना ही क्या! जिसका स्मरण भी आनंद उत्पन्न करे, उसके साक्षात् अनुभव के आनंद का क्या कहना? वह कैसे प्रगट होता है? कि उसके ध्यान से ही प्रगट होता है।

जीव ने पर का ही ध्यान किया है और पर को ही सँभाला है, अपने स्वरूप को कभी ध्यान में नहीं लिया और न उसकी सँभाल की है। अनंत गुण से भरपूर निजस्वरूप को सँभाले तो परमात्मदशा प्रगट हो जाये।

आत्मा परमात्मस्वरूप है, उसका प्रकाशक यह शास्त्र है; वह परमात्मस्वरूप जिनके प्रगट हुआ, ऐसे शुद्धात्मा को नमस्कार करके स्वानुभूति से इस आत्मा का परमात्म स्वरूप कैसे प्रगट हो, वह बतलाया है।

शुद्धस्वरूप को प्राप्त सिद्ध भगवंतों का आत्मा इस आत्मा के शुद्धस्वरूप को भी प्रकाशित करता है। आत्मा आनंदधाम है, ऐसा सिद्ध भगवंत प्रसिद्ध करते हैं। वे तो शुद्ध परमात्मा हो चुके हैं और उनका स्वरूप देखनेवाले को भी वे (दर्पण की भाँति) निजस्वरूप दिखलाते हैं कि तेरा आत्मा भी ऐसा ही है।

मैं ऐसे सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करता हूँ... अर्थात् मेरा नमस्कार, मेरी विनय, मेरा बहुमान और मेरी भावना एक परमात्मस्वरूप के प्रति ही है; उसी के प्रति मेरा झुकाव है, उससे बाह्यभावों की ओर से मैं विमुख होता हूँ और परमात्मस्वरूप के प्रति नमता हूँ, ढलता हूँ, झुकता हूँ; उसमें अंतर्मुख होता हूँ।

सिद्ध भगवंत निजस्वरूप का अवलोकन करके उसके ध्यान द्वारा ही सिद्धि को प्राप्त हुए, इसलिये अपने परमात्मस्वरूप का ध्यान ही सिद्धि का उपाय है—ऐसा बतलाया। जो सिद्धों को नमस्कार करता है, वह सिद्धि का ऐसा ही उपाय मानता है, इससे विरुद्ध उपाय को नहीं मानता। राग को मोक्ष हेतु समझकर उसमें जो उपयोग लगाये, उसने सिद्ध भगवान को नमन किया ही नहीं है, उसने तो राग को ही नमन किया है—उसी में ढला है।

जीव को ध्यान करना तो आता है अर्थात् कहीं तो वह अपने उपयोग को स्थिर करके एकाग्र करता है। जो जीव कषाय में उपयोग को स्थिर करता है, वह संसार में भटकता है; जो जीव परमात्मस्वरूप में उपयोग लगाता है, वह परमात्मा होता है।

भगवान ने क्या कार्य किया ?

अपने स्वरूप का ध्यान कर-करके केवलज्ञानादि चतुष्टयरूप कार्य किया है; शुद्ध रत्नत्रयरूप जो अंतरात्मदशा, वह परमात्मदशा के कारणरूप 'कारणसमयसार' है, और केवलज्ञानादि प्रगट हुए, वह 'कार्यसमयसार' है। शुद्ध रत्नत्रय अर्थात् निश्चयरत्नत्रय; उसके द्वारा कार्यसमयसाररूप परिणमित होने का कार्य भगवान ने किया।—इसप्रकार परमात्मस्वरूप को और उसके उपाय को लक्ष में लेकर मंगलाचरण किया है।

मंगलाचरण अत्यंत भक्तिभाव से किया है, प्रथम पाँच दोहों द्वारा तीन काल के सिद्ध भगवंतों को नमस्कार किया है; पश्चात् जिनवर अरहंतदेव को तथा आचार्य, उपाध्याय, साधु इन तीनों को नमस्कार किया है। सात दोहों तक पंच परमगुरु को भाव से पुनः पुनः वंदन करके प्रभाकर भट्ट नाम का शिष्य पूछता है कि—हे स्वामी ! इस संसार में रहते हुए मेरा अनंत काल बीत गया, परंतु मैंने किंचित सुख प्राप्त नहीं किया, बहुत दुःख पाया है; हे प्रभो ! परमात्मस्वरूप को जाने बिना मैंने ऐसे दुःख प्राप्त किये; चार गति के दुःखों से संतप्त ऐसे मुझे प्रसन्न होकर कृपा करके चार गति के दुःखों का नाशक ऐसा जो परमात्मस्वभाव, उसका उपदेश दो ! देखो, कितनी सरस भूमिका बनायी है !! चार गतियों के दुःख का जिसे त्रास हुआ है और उससे छूटने

के लिये जो परमात्मस्वभाव समझना चाहता है—ऐसे शिष्य के लिये इस शास्त्र में परमात्मस्वरूप का प्रकाश किया है। यह कोई अकेले प्रभाकर भट्ट की बात नहीं है, परंतु चार गति के दु:खों से जिसे छूटना हो, ऐसे प्रत्येक जिज्ञासु जीव को अपने को प्रभाकर भट्ट जैसा समझकर यह शास्त्र सुनना है।

तथा इसमें यह बात भी शिष्य के ध्यान में आ गई कि परमात्मस्वरूप को जानना ही चार गति के दु:खों से छूटने का उपाय है; इसलिये वह मुझे जानना चाहिये। हे स्वामी! आप उस परमात्मस्वभाव का ऐसा उपदेश सुनाइये कि आपके प्रसाद से मैं समझकर चार गति के दु:खों से छूट जाऊँ। देखो, यह समझनेवाले की उत्कंठा!

ऐसी उत्कंठावाले जिज्ञासु जीव को परमात्मस्वरूप प्रगट होने का उपाय इस परमात्मप्रकाश में बतलाकर संतों ने उपकार किया है।

हे आत्मन्! तू अनादि-अनंत पूर्ण स्वभाव से भरा है... वर्तमान क्षणिकवृत्ति जितना तू नहीं है, इसलिये क्षणिकवृत्ति के वश न हो... सहज स्वभाव का स्मरण करके क्षणिक वृत्ति के आवेग को तोड़! सहज स्वभाव की भावना में लीन होने से तेरे परिणाम उपशांत होंगे और वृत्ति का प्रवाह अंतरोन्मुख होगा।

मोक्षमार्गप्रकाशक में नय विवरण

[सोनगढ़ में इस श्रावण मास-जैन शिक्षण शिविर में उत्तम कक्षा में प्रयोजनभूत निम्नप्रकार विषय का खास विवेचन आदरणीय श्री रामजीभाई द्वारा हुआ था। शिक्षण शिविर में कुल संख्या ३१० थी।]

''**वहाँ**'[१] जिनागम में निश्चय व्यवहाररूप वर्णन है। उनमें यथार्थ का नाम निश्चय है, उपचार का नाम व्यवहार है।'' मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ १९३ नवीन हिन्दी आवृत्ति, अध्याय ७

'क्योंकि निश्चय व्यवहार का **सर्वत्र**[२] ऐसा ही लक्षण है। **सच्चा निरूपण सो निश्चय, उपचार निरूपण सो व्यवहार।**' मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४९ नं० हिन्दी आवृत्ति, अध्याय ७ उसका आगमाधार॥ करणानुयोग का शास्त्र श्री धवल पुस्तक १३, पृष्ठ २८२-२८३ में कथन निम्नप्रकार है।

द्वादशांग का नाम आत्मा है क्योंकि वह आत्मा का परिणाम है और परिणाम परिणामी से भिन्न होता नहीं है क्योंकि मिट्टी द्रव्य से पृथग्भूत घटादि पर्यायें पाई नहीं जाती।

शंका—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत ये दोनों ही आगम **सामान्य की अपेक्षा समान है, अतएव जिसप्रकार भावस्वरूप द्वादशांग को आत्मा माना है, उसीप्रकार द्रव्यश्रुत के भी आत्मरूपता का प्रसंग प्राप्त होता है ?**

समाधान —नहीं, क्योंकि वह द्रव्यश्रुत आत्मा का धर्म नहीं है, उसे जो आगम संज्ञा प्राप्त है, वह उपचार से प्राप्त है। वास्तव में वह आगम नहीं है।

जीव को पुद्गल कर्म का कर्तृत्व उपचार से है' क्योंकि परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जाये, परंतु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन है नहीं।' मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २५२ नं. आ. किशनगढ़, प्र. अ. ७

आगमाधार श्री धवल पुस्तक ६, पृष्ठ ११

''मोहनीय कर्म है॥८॥ जिसके द्वारा मोहित हो, वह मोहनीय कर्म है।

शंका—इसप्रकार की व्युत्पत्ति करने पर जीव के मोहनीयत्व प्राप्त होता है।

---

१ व २—वहाँ और सर्वत्र का अर्थ = चारों अनुयोगों में

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिये। क्योंकि जीव से **अभिन्न** [१] और 'कर्म' ऐसी संज्ञावाले पुद्गलद्रव्य में **उपचार से कर्तृत्व का आरोपण करके,** उसप्रकार की व्युत्पत्ति की गई है।''

''व्यवहार अभूतार्थ है; **सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता** किसी अपेक्षा **उपचार से अन्यथा निरूपण करता है।**'' मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ २४९, न.हि., आ० अध्याय ७

करणानुयोग का आगमाधार

'''**शंका**—सिद्धों के भी 'जीवत्व' क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सिद्धों में [२] 'जीवत्व' उपचार से है और उपचार को सत्य मानना ठीक नहीं।'' देखो श्री धवल पुस्तक १४, पृष्ठ १३

१—अभिन्न अर्थात् एक क्षेत्रावगाह अपेक्षा दो द्रव्यों को अभिन्न उपचार से कहा जाता है।

२—जीवत्व–यहाँ जीवत्व का अर्थ व्यवहार प्राणरूप, संसार अवस्था योग्य जीवत्व।

तात्पर्य

पंडित प्रवर श्री टोडरमलजी ने तात्पर्य निम्नप्रकार कहा है—

''×× उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये सो व्यवहार मोक्षमार्ग है।

×× एक निश्चय मोक्षमार्ग है, एक व्यवहार मोक्षमार्ग है। इसप्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।'' यह सब कथन अक्षरशः सत्य है, ऐसा उपरोक्त आगमाधार से परिपूर्णतया आगमानुकूल है। श्री धवल उस काल में प्रकाशित नहीं था तो भी पंडितजी का यह सब कथन श्री धवल के अनुसार ही है।

प्रश्न—क्या उपचार सर्वथा असत्यार्थ है ?

उत्तर—मोक्षमार्ग में निमित्त है किन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं है। इस अपेक्षा से असत्यार्थ है और उस काल में कैसा निमित्त होता है, वह जानने के लिये व्यवहार के स्थान में सत्यार्थ है; वास्तव में भेद उपचार को हितकर मानना मिथ्याश्रद्धा है। आश्रय करनेयोग्य मानना मिथ्याश्रद्धा है।

सुवर्णपुरी समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) तारीख ४-९-६६ परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुख शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे समयसारजी शास्त्र तथा दोपहर को नियमसारजी शास्त्र चल रहे हैं। जैन दर्शन शिक्षण वर्ग में इस वर्ष बड़ी संख्या में धर्म जिज्ञासु पधारे हैं और तीन कक्षाओं में जो पढ़ाई चलती है, उसमें बड़े भारी उत्साह और लगन से अभ्यास कर रहे हैं जो देखते ही बनता है। रात्रि को तत्त्वचर्चा—शंका समाधान चलता है।

सम्मेदशिखर दिवस

सोनगढ़, तारीख २२-८-६६—श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की ओर से यह समाचार जानकर सभी तीर्थ भक्त जिज्ञासुओं को हर्ष होगा कि महान तीर्थराज श्री सम्मेदशिखर के संबंध में दिगम्बर जैन समाज का संपूर्ण अधिकार बना रहे, उस रीति से बिहार सरकार और दिगम्बर जैनों के बीच इकरारनामा हो गया है। इस संबंध में तीर्थ क्षेत्र कमैटी की ओर से सोनगढ़ तारीख १०-८-६६ के दिन तार आया था और इस शुभ समाचार की प्रसन्नता व्यक्त करनेरूप उत्तर तार से संस्था की ओर से भेजा गया था और सोनगढ़ राजकोट आदि जिन मंदिरों में इसके हर्षोलक्ष्य में खुशियाँ मनाकर पश्चात् आम सभा में सर्व सम्मति से दिगम्बर तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रति तथा बिहार सरकार के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया गया।

पाठकों को ध्यान में होग कि कुछ समय पूर्व बिहार सरकार ने हमारे महान तीर्थराज श्री सम्मेद शिखरजी के संबंध में दिगम्बर जैन समाज को साथ में न लेकर अकेले श्वेताम्बर जैन समाज के साथ इकरारनामा कर लिया था, इससे समस्त भारत के सभी दिगम्बर जैन समाज के हृदय को बड़ी भारी ठेस पहुँची, भारी दु:ख हुआ और भारत में उस इकतरफा इकरार का सर्वत्र विरोध हुआ। दिल्ली में एक लाख संख्या में दिगम्बर जैनियों का अभूतपूर्व जुलूस अपने डेप्युटेशन सहित बड़े प्रधानमंत्री श्री शास्त्रीजी के पास पहुँचे थे, श्री शास्त्रीजी ने योग्य करने का वचन दिया था। अब दिगम्बर जैन समाज के संपूर्ण अधिकारों का रक्षण होगा। इसप्रकार इकरारनामा बिहार सरकार ने कर दिया है। इस संबंध में दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी की कार्यवाही प्रशंसनीय है। हमारी संस्था के माननीय प्रमुख श्री नवनीतभाई सी जवेरी भी तीर्थक्षेत्र कमेटी के एक सदस्य हैं।

विशेष में—तीर्थक्षेत्र कमेटी के संदेश में एक बात यह लिखी है कि केसरियाजी के दिगम्बर जैन मंदिर संबंध में कानूनी कार्यवाही चल रही है; श्वेताम्बर भाईयों के द्वारा जो कमेटी की रचना की गई थी वह कोर्ट के द्वारा रोक दी गई है। उसमें भी सफलता मिलेगी और योग्य समाधान होगा – ऐसा हमको पूर्ण विश्वास है।

जय सम्मेद शिखरजी! जय आदिनाथ (ऋषभदेवजी)!!!

भोपाल (म०प्र०)—तारीख २२-८-६६ को श्री पार्श्वनाथस्वामी का निर्वाण महोत्सव व श्री सम्मेदशिखर दिन अत्यंत उत्साह के साथ मनाया गया है। रात्रि को आम सभा का विशाल आयोजन हुआ। ब्रह्मचारी राजारामजी तथा विशेष प्रवीण वक्ता श्री सूरजमलजी ने पार्श्वनाथस्वामी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए आत्म कल्याण के मूलभूत तत्त्वों का भाव भासनरूप श्रद्धान-ज्ञान करते हुए उन पर सम्यक् आचरण करने के लिये विशेष प्रेरणा प्रदान की। पश्चात् सम्मेदशिखरजी प्रकरण पर प्रकाश डालते हुए, वर्तमान समझौते का स्वागत किया, बिहार सरकार के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किया गया तथा दूसरे प्रस्ताव द्वारा श्री साहू शांतिप्रसादजी व अखिल भारत दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी के महामंत्री तथा समाज के अन्य नेता जिनके विवेकपूर्ण सद् प्रयत्नों के कारण यह समझौता सम्भव हो सका है, उनको धन्यवाद दिया गया।

रतनलाल सौगानी, स० मंत्री
श्री दिगम्बर जैन पंचायती कमेटी
भोपाल (म०प्र०)

हे जीव! जगत के जंजाल में तू अपने आत्मा को न भूल! कषायों के वश होकर तू अपनी आत्म शांति को न खो। परभावों के अभ्यास में तूने अभी तक का समय गँवाया... अब प्रसन्नता पूर्वक स्वद्रव्य के अभ्यास में तत्पर हो। अपने ही हाथ में तेरा हित है।

दो बातें

सुखी कौन ?

वैरागी सर्वत्र सुखी, वैरागी को कहीं दु:ख नहीं है; परंतु सम्यग्ज्ञान के बिना सच्चा वैराग्य नहीं होता। इसलिये सम्यग्ज्ञान सुख का मूल है।

त्रिपुटी शोभायमान है

ज्ञानी अवश्य वैराग्यवान होता है। वैराग्यवान को कहीं दु:ख नहीं है। इसलिये ज्ञानी सर्वत्र सुखी है। इसप्रकार ज्ञान, वैराग्य और सुख की त्रिपुटी सर्वत्र शोभायमान है।

नया प्रकाशन

श्रीमत्भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित

श्री नियमसारजी शास्त्र (दूसरी आवृत्ति)

सर्वज्ञ वीतराग कथित महान आध्यात्मिक भागवत् शास्त्र, ११ वीं शती के अध्यात्मरस के सर्वोत्तम कवि शिरोमणि श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिवरकृत संस्कृत टीका तथा अक्षरश: प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद सहित शास्त्र जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से मांग है, पूर्णरूप से संशोधित, यह ग्रंथ महान, अनुपम, पवित्र तत्त्वज्ञान की अपूर्व निधि समान है। पृष्ठ संख्या ४१५, बड़ी साइज में, रेगजीन कपड़े की सुन्दरतम जिल्द मूल्य बहुत कम कर दिया है। मात्र ४/- पोस्टेजादि अलग। देश-विदेश में, कोलेज-विश्वविद्यालयों में-सर्वत्र सुंदर प्रचार के योग्य अत्यंत सुगम और सब प्रकार से सुंदर ग्रंथ है। जिज्ञासुगण शीघ्र ओर्डर भेजें।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५–०
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४–०
श्री नियमसार शास्त्र	४–०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३–५०
समयसार प्रवचन, भाग १–२–३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	४–०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ–९००	५–०
स्वयंभू स्तोत्र	०–५०
मुक्ति का मार्ग	०–५०
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०
'' ''द्वितीय भाग	२–०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १–२–३	०–६०
योगसार–निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०–३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१–०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०–७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में

[डाकव्यय अतिरिक्त]

जैन बाल पोथी	०–२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	१–०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	प्रेस में
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा. प्रेस में	
भेदविज्ञानसार	२–०
अध्यात्मपाठ संग्रह	४–०
वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
स्तोत्रत्रयी	०–५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२–०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३–७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में ग्रन्थ का मात्र	१८) ६–०
अभिनंदन ग्रंथ	७–०

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।